Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

जैव उर्वरक (कल्चर)

डॉ. नरेन्द्र कुमार सांखला
भूगोल विभाग,
पोस्ट – डोक्ट्रल फैलो (ICSSR),
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर,भारत।

साराशं – कृषि प्रधान देशों में भारत वर्ष का नाम भी अग्रणी है। हरित क्रांति के आव्हान के साथ ही देश में कृषि उत्पादन वृद्धि के भिन्न पहलुओं पर विचार विमर्श आरंम्भ हो चुका था। आधुनिक तकनीक एवं कम लागत के संसाधनों की आवश्यकता महसूस की गई। आधुनिक कृषि में जैव उर्वरकों के उपयोग पर चर्चा हो रही है किन्तु जैव उर्वरकों के इतिहास पर नजर डाले तो पता चलता है कि सन 1834 में वैज्ञानिक बॉसिनगॉट ने सर्वप्रथम जैविक नत्रजन यौगिकीकरण की अवधारण की खोज की तथा हैलरी गेल तथ विलफार्थ ने 1886 में इसे समर्थन दिया। एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक ग्राम अग्राही अंडकार दण्डाणु होता है। ये आक्सीजीवी जीवाणु होता है। एजोला स्वच्छ पानी में तैरती हुई अवस्था में पाया जाने वाला एक निम्नवर्गीय पादप है जो विश्वभर में पाया जाता है। ये स्वच्छ पानी के तालाबों, गडडो तथा झीलों में पानी की सतह पर तैरता हुआ दिखाई देता है।

मुख्यशब्द – जैव, उर्वरक, कल्चर, कृषि, देश,हरित।

परिचय एवं इतिहास - इन्ही आवश्यकताओं द्वारा हरित क्रांति सार्थक हो सकती है तथा ये प्रमुख रुप से उच्च गुणवत्ता वाले वर्डरक,बीज,व्यवस्थित कृषि संसाधन एवं पर्याप्त जल आपूर्ति द्वारा संभव हो सकता है। पौधों को नत्रजन उपलब्ध कराने वाले उर्वरकों की मांग जिस गति से बढी है उसी गति से इसके निर्माण की प्रक्रिया भी फलती फूलती जा रही है। चूंकि इन उर्वरकों के निर्माण में उच्च स्तर पर उर्जा की आवश्यकता होती है। इन परिस्थितियों में वायुमण्डलीय सूक्ष्मजीव, जिनकी दैनिक क्रियाओं हेतु उच्च उर्जा की आवश्यकता नहीं होती है।

पौधों की सामान्य वृद्धि के लिये उचित मात्रा में विभिन्न पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। सोलह प्रमुख रासायनिक पोषक तत्व पौध वृद्धि के कारक के रुप में पहचाने गये है। इन पोषक तत्वों में से कार्बन, हाइड्रोजन एवं आक्सीजन को पौधे वायुमंडल से ग्रहण करते है जबकि शेष पोषक तत्व मृदा द्वारा पौधो तक पहुचतें है। अप्राकृतिक रुप से इन पोषक तत्वों के असंतुलित प्रयोग से मृदा उर्वरा शक्ति निरंतर क्षीण होती जा रही हैं जिससे सतत कृषि उत्पादन बुरी तरह प्रभावित हुआ है अतः वर्तमान कृषि प्रणाली में रासायनिक उर्वरकों के साथ प्राकृतिक संसाधनों द्वारा निर्मित पर्यावरण स्नेही उत्पादों के प्रयोग की उपयोगिता बढी है। रासायनिक, कार्बनिक तथा जैविक संसाधनों से प्राप्त पोषक तत्वों के सम्मिलित उपयोग से न केवल सतत कृषि उत्पादन बल्कि मृदा उर्वरा शक्ति में भी वृद्धि संभव है।

कुछ सूक्ष्म जीवों में वायुमंडलीय नाइट्रोजन यौगिकीकरण, अघुलनशील स्फुर को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित करने तथा कार्बनिक पदार्थो को विघटित करने की क्षमता होती है। इन प्रक्रिया द्वारा ये सूक्ष्मजीवों पौधों को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध करा कर मृदा

उर्वरा शक्ति के साथ कृषि उत्पादन में भी वृद्धि करने में सहायक होते है। जैव उर्वरक इन्ही लाभदायक सूक्षजीवों का कोयले सृदृश्य पदार्थ चारकोल, लिग्नाईट या पीट में मिश्रण होता है जो कि नत्रजन या स्फुर उपलब्ध कराने वाले हो सकते है।

ये सक्ष्मजीव जीवाणु, कवक नील हरित शैवाल हो सकते है जिन्हे उचित माध्यम में मिश्रित कर बीज, पौध जड, शिशुपादप या मृदा को उपचारित करने पर कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि देखी जा सकती है। जैव उर्वरकों का उपयोग रासायनिक उर्वरकों की मात्रा कम कर पूरक पोषक के रुप में किया जा सकता है। इनकी उपापचयी लस्वरुप स्त्रावित होने वाले विभिन्न विटामिन, पौध वृद्धि कारक आदि पौधों की वृद्धि के साथ कृषि उत्पादों में भी वृद्धि करने में सहायक होते है। इसके अतिरिक्त जैव उर्वरक कई मृदा जनित रोगो को नियंत्रित करने में भी सहायक सिद्ध होते है इन सभी फायदों के अतिरिक्त जैव उर्वरक किसी प्रकार का प्रदूषण नही तथा इनका कोई दुष्प्रभाव नही फैलाते है तथा इनका कोई दुष्प्रभाव पौधो या इसका उपयोग करने वाले पर नही पडता है ।

विगत कुछ दशकों में इन जैव उर्वरकों की आवश्यकता महसूस की गई क्योकि इनके 19 स रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता में कमी संभव हो सकती है। विश्व के वामन क्षत्रों में जैव उर्वरकों पर किये गये शोध कार्यो से ये तथ्य सामने आये है कि अनुकूल परिस्थितियों में दलहनी फसलें 50-500 किग्रा0 प्रति हैक्टेयर की दर से वायुमंडलीय नाइट्रोजन का यौगकीकरण कर सकती है।

आधुनिक कृषि में जैव उर्वरकों के उपयोग पर चर्चा हो रही है किन्तु जैव उर्वरकों के इतिहास पर नजर डाले तो पता चलता है कि सन 1834 में वैज्ञानिक बॉसिनगॉट ने सर्वप्रथम जैविक नत्रजन यौगिकीकरण की अवधारण की खोज की तथा हैलरी गेल तथ विलफार्थ ने 1886 में इसे समर्थन दिया। प्रायोगिक रुप से जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण को सन् 1888 में बेजरिंक नामक सूक्ष्मजीव वैज्ञानिक ने प्रमाणित किया तथा सर्वप्रथम दलहनी जडों में पाई जाने वाली ग्रथियों से नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले जीवाणु को प्रयोगशाला परिस्थितियों में सर्वर्धित करने में सफलता प्राप्त की। उन्होने इस जीवाणु को बेसीलम रेडीसीकोला नाम दिया जिसे अब राइजोबियम के नाम से जाना जाता है। उन्होने सन 1902 में एजो टोबैक्टर तथा 1925 में एजोस्प्रिलम नाम जीवाणू को भी सवंर्धित किया। व्यावसायिक रुप से जैव उर्वरक का निर्माण सर्वप्रथम सन 1895 में नाबे तथा हिल्टनर नाम वैज्ञानिकों ने अमेरिका में किया था। इस उत्पाद को उन्होने नाइट्रेजीन नाम दिया था। ये उत्पाद राइजोबियम जीवाणु द्वारा निर्मित किया गया था। भारत में जैव उर्वरकों की दिशा में सन 1934 में कदम उठाते हुए राजोबियम दीने का निर्माण किया गया। जैव उर्वरकों के क्षेत्र में कुछ प्रमुख उपलब्धियां निम्न प्रकार है।

1. सन 1834 में वैज्ञानिक जेवी बासिन गाल्ट ने दलहनी पौधों द्वारा जैविक नाइट्रोजन यौगिकीकरण की अवधारण दी।
2. बेजरनिक ने बताया कि दलहनी पौधो की ग्रंथियों में उपस्थित जीवाणु नाइट्रोजन यौगिकीकरण में सहायक होता हैं।
3. बेजरनिक ने एजोटोबैक्टर जीवाणु की खोज की।
4. अमेरिका में गुणवता के आधार पर जैव उर्वरक निर्माताओं को लाइसेन्स प्रदान किये थे।
5. अमआर माधोक ने राहोबियम टके का निर्माण किया था।
6. भारत में चरकोल की संवाहक निर्माण में पीट की संवाहक पदार्थ के रुप में खोज की।
7. भारत में सर्वप्रथम जैव उर्वरकों का व्यावसायिक उत्पादन ।
8. राइजोबियम के लिये आईएसआई मानक स्तर प्रदान किया गया
9. एजोटोबैक्टर के लिये आईएसआई मानक स्तर प्रदान किया गया।
10. वी ईश्वरन ने भारतीय पीट को संवाहक के रुप में स्थापित किया।

जैव उर्वरकः वर्गीकरण एवं अभिलक्षण

वर्गीकरण- प्रकृति का वरदान समझे जाने वाले उर्वरकों के वर्गीकरण की बात करे तो साधारणतः ये नाइट्रोजन योगिकीकारक एवं फास्फेट विलेयीकारी के रुप में परिभाषित किये जा सकते है। तीसरे प्रकार के जैव उर्वरक कम्पोस्ट प्रक्रिया को प्रेरित करने तथा उत्पादित कम्पोस्ट की गुणवता वृद्धि करने में महत्वपूर्ण योगदान देते है।

अभिलक्षण- जैव उर्वरक प्रौधोगिकी के अध्ययन का एक प्रमुख तथ्य है जैव उर्वरक निर्माण में प्रयुक्त होने वाल विभिन्न सूक्ष्मजीवों के अभिलक्षणों का ज्ञान। इसके अभाव में जैव उर्वरक निर्माण की गुणवता पर प्रश्न चिन्ह लग सकता हैं। इस खण्ड के अन्तर्गत विभिन्न जैव

उर्वकों के प्रमुख अभिलक्षणों का उल्लेख किया गया है। तकनीकी रूप से जैव उर्वरक उनकी कार्यिक के आधार पर तीन प्रकार के होते है। अविकल्पी आक्सीजीवी, अविकल्पी अनाक्सीजीवी तथा विकल्पी अनाक्सीजी प्रथम प्रकार के सूक्ष्मजीव आक्सीजन की उपस्थिति में ही अपनी क्रियाविधि चला पाते है जबकि दूसरे प्रकार के आक्सीजन की अनुपस्थिति में तीसरे प्रकार के सूक्ष्मजीव साधारणत आक्सीजन की उपस्थिति में अपने क्रिया कलापों का वहन करने है किन्तु इसकी अनुपस्थिति में भी सुचारु रुप से कार्य करते है। उक्त तीनों वर्गों के सूक्ष्मजीव जैव उर्वरक के रुप में प्रयुक्त होते है।

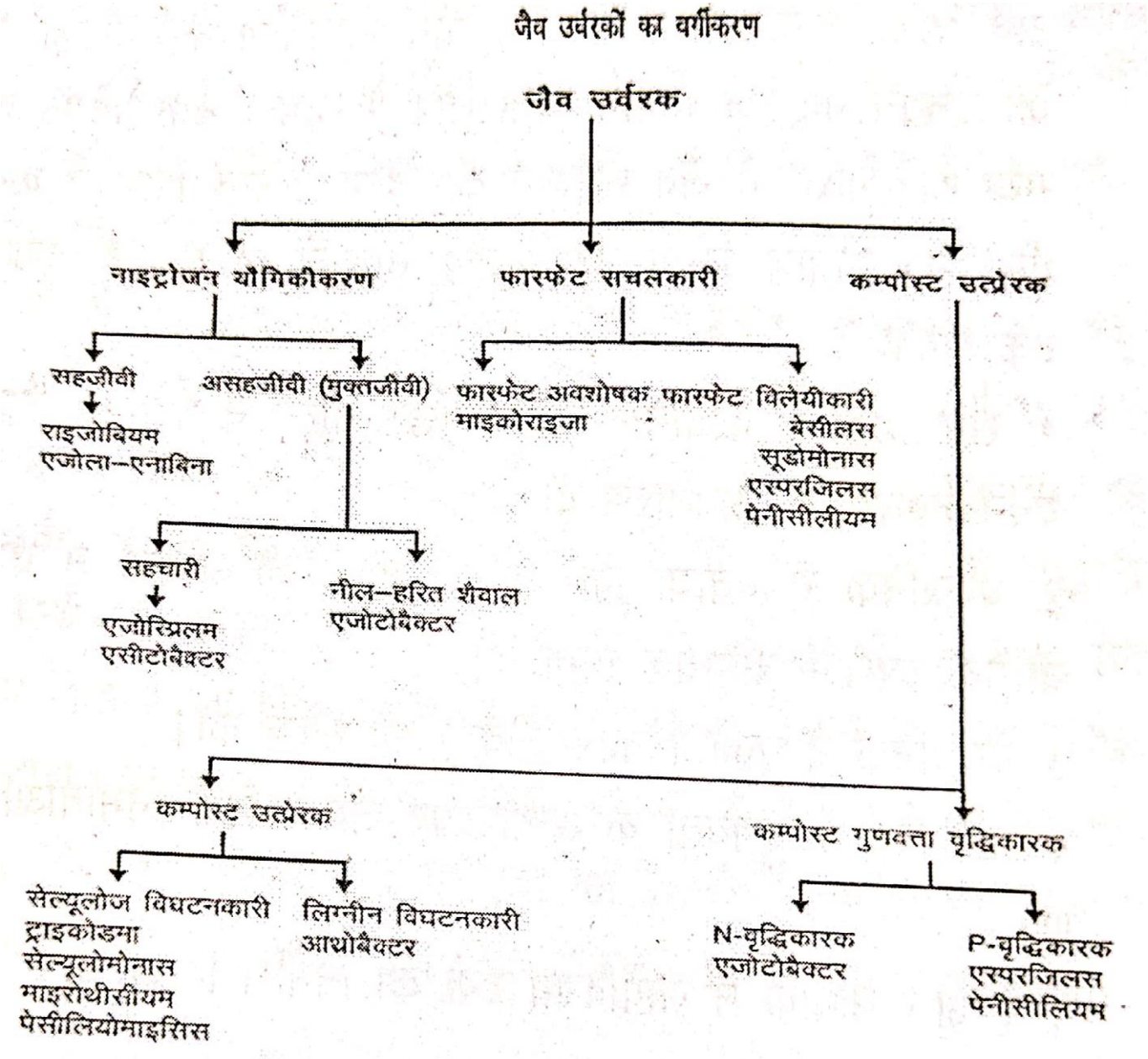

राइजोबियम जैव उर्वरक-

राइजोबियम दलहनी फसलों की जड़ों में ग्रंथिकाएं बनाने की क्षमता रखने वाले उस जीवाणु का नाम है जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण कर उसे पौधों को उपलब्ध कराता है।

वर्गीकरण

कुल राइजोबियेसी

वंश राइजोबियम मटर मसूर राजमा खेसरी बरसीम आदि में पाया जाता है।

ब्रेडीराइजोबियम सोयाबीन मूंग चना मूंगफली आदि में।

एजोराइजोबियम तने में ग्रंथी का निर्माण करता है।

राइजोबियम एक ग्राम अग्रामी जीवाणु होता है जो आकार में 0.5 से 0.9 माइक्रोमीटर चौडे तथा 1.2 से 3.0 माइक्रोमीटर लम्बाई वाले दण्डाणु होते है।

यीस्ट निष्कर्ष मेनीटाल एगर संर्वधन माध्यम पर ये गोल दूधिया रंग के रुप में विकसित होता है जिसके किनारे एक दम साफ होते है।

राइजोबियम एक गतिशील जीवाणु होता है जिसकी सतह पर परिपक्ष्माभी कशाभिकाएं पाये जाते है। इनकी कोशिकाओं में पाली बीटा हाइड्राक्सी ब्यूटाइरेट की कणिकाएं पायी जाती है। इनमें अन्तशचोल का अभाव होता है। जो कि अपनी कोशिकाओं क संश्लेषण के लिये कार्बन व उर्जा अपने कार्बनिक आहार से प्राप्त होता हैं।

राइजोबियम जैव उर्वरक फसल विशिष्ठ होता है तथा इसे दो प्रमुख जातियों में विभक्त किया गया है। तेज वृद्धि करने वाले जीवाणु जैसे राइजोबियम ट्राइफोलाई रा० लग्यूमिनोसेरम, रा0 मेलीलोटी, रा० फेजियोलाई आदि। धीमी गति से वृद्धि करने वाले जीवाणु जैसे रा० जेपोकिम, रा० लूपिनाई आदि। तेज गति से वृद्धि करने वाले राइजोबियम की प्रजातिया ग्लूकोज, ग्लैक्टोज, फक्टोज,एराबिनो, जाइलूलोज, मैनिटाल आदि शर्कराओं का कार्बनिक आहार के रुप में प्रयोग करती है।

राइजोबियम जैव उर्वरक को प्रभावित करने वाले कारक

तापमान, मृदा पीएच, कार्बनिक पदार्थ,कीटनाशक दवाएं.मृदा नत्रजन, मृदा स्फुर।

राइजोबियम जैव उर्वरक द्वारा लाभन्वित फसले

राइजोबियम जैव उर्वरक का उपयोग फसल विशिष्ठ होता है । विभिन्न प्रकार की दलहनी एवं फलीदार फसलों में इसका उपयोग किया जा सकता है। चना, मटर, मसूर, मंग, अरहर, सोयाबीन, बरसीम,रिजका आदि फसलों में ये लाभदायक होता है।

एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक- एजोटोबैक्टर एक मुक्त जीवी जीवाणु है जो कि मृदा में पाया है तथा नाइट्रोजन यौगिकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका रखता है।

वर्गीकरण-- कुल एजोटोबैक्टीरिएसी

वंश- एजोटोबैक्टर

एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक ग्राम अग्राही अंडकार दण्डाणु होता है। ये आक्सीजीवी जीवाणु होता है। इसकी सात प्रजातियां एजोटोबैक्टर बैजीरिंकाई, ए.क्रोकोकम, ए. पेसपेली,ए. विनलेण्डाई, आदि प्रमुख है। ए. ऐजिलिस तथा ए.इन्सिगनिस जलीय वातावरण की प्रजातियां है। अन्या प्रजातियां की तहर इन प्रजातियों का आकार आयु व पोषण के अनुसार नही बदलता है। ए.बैजरिकाई प्रजाति की कोशिकाएं आकार में अपेक्षाकृत छोटी होती है तथा आयु तथा पोषण वर्धन के साथ इनमें बदलाव नही आता है। एजोटोबैक्टर में पाये जाने वाले इस गुण, आयु व वर्धन के साथ साथ कोशिका आकार में परिर्वतन होता है अतः इसे बहुरुपी जीवाणु कहते है।

एजोटोबैक्टर वे की सभी प्रजातियां प्रतिकूल वातावरणीय परिस्थितियों में अपने चारों ओर एक मोटा बहि चोल बना लेती है इस प्रक्रिया से जीवाणु ध्वनि अभिक्रिया, परबैगनी प्रकाश,उष्मा आदि की अधिकता में अपना बचाव सुनिश्चित कर लेता है। एजोटोबैक्टर वंश की कुछ प्रजातियों में सम्पुट निर्माण पाया जाता है। एजोटोबैक्टर वंश की कुछ प्रजातियों में कोशिकाऐ पुरानी हो जाने पर काले रंग का पदार्थ बनता है जिसे मेलानिन कहते है। इसके कारण संवर्धन माध्सम पर जीवाणु गुच्छ काली दिखाई देती है।

एजोटोबैक्टर शर्करा तथा कार्बनिक अम्लों का प्रयोग उपयोग अपने पोषण के लिये करता है जिससे कार्बन की पूर्ति हो जाती है। नाइट्रोजन इसे नाइट्रोजन यौगिकीकरण की प्रक्रिया द्वारा प्राप्त हो जाती है। जेनसन संर्वधन माध्यम पर इसका वर्धन किया जा सकता है। इसके जीवाणु गुच्छ इस संर्वधन माध्यम पर गोल एवं चमकीले सफेद रंग की दिखाई देती है जो कि पारदर्शी भी हो सकती है।

एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक द्वारा लाभान्वित फसले

तापमान- एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक की क्रियाशीलतार 20 डिग्री से 30 डिग्री के मध्य सुचारु रुप से चलती है किन्तु इस अनुकूल ताप से निम्न या उच्च स्तर पर इसकी क्रियाशीलता को प्रभावित करता है।

मृदा पीएच-एजोटोबैक्टर के विभिन्न उपापचयी क्रियाओं पर मृदा पीएच का परोक्ष प्रभाव पडता है। मृदा में प्रचुर मात्रा में कार्बनिक पदार्थो की उपस्थिति तथा जडों के साथ साहचर्य से ये जीवाणु 5.5 पीएच मान पर भी भली भाति क्रियाशील रहते है।

कार्बनिक पदार्थ-सामान्यत मृदा में दूसरे जीवाणुओ की प्रतिस्पर्धा के कारण एजोटोबैक्टर मृदा कार्बनिक पदार्थों का उपयोग नही कर पाता है। कीटनाशक दवाएं- कीटनाशक दवाओं के प्रति एजोटोबैक्टर की संवेदनशीलता राइजोबियम जैव उर्वरक की भाति ही होती है। बाविस्टीन तथा डाइथेन एम द्वारा बीजोपचार से इसकी क्रियाशीलता अप्रभावित रहती है।

मृदा नत्रजन एंव स्फुर- राइजोबियम जैव उर्वरक की भाति ही इसके साथ भी मृदा नाइट्रोजन एवं फास्फोरस की उचित मात्रा इसकी क्रियाशीलता को सकारात्मक रुप से बढाती है।

एजोस्प्रिलम जैव उर्वरक-एजोस्प्रिलम जैव उर्वरक एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक से काफी समानता लिये होता है। इसका उपयोग अपेक्षाकृत गर्म स्थानों पर होने वाली फसलों में किया जा सकता है। एजोस्प्रिलम एक ग्राम अग्राही सर्पिलाणु होता है जो आकार में माइक्रोंन होता है। इसका आकार कुछ हद तक परिवर्तित पाया जा सकता है। जो कि पौधो की जडो में पाया जाता है। एजोस्प्रलम जीवाणु नाइट्रोजन युक्त संवर्धन माध्यम में वर्धन नही कर पाते है। जबकि नाइट्रोजन मुक्त संवर्धन माध्यम में इसकी वृद्धि अच्छी होती है। जबकि ए.लिपोफेरम जिसे की धान से सवर्धित किया गया था में इसका आभाव होता है।

एजोटोबैक्टर की भाति ही एजोस्प्रिलम भी पादप वृद्धि कारक का स्त्रावण करते है जो कि फसलों की कायिक वृद्धि के साथ साथ संवर्धन माध्यम रंग हरे से नीला होता है जिससे इसकी संवर्धन की जानकारी की जा सकती है।

एजोस्प्रिलम जैव उर्वरक को प्रभावित करने वाले कारक

तापमान- एजोस्प्रिलम जैव उर्वरक की क्रियाशीलता तक सुचारु रुप से चलती रहती है। मृदा- मृदा अधिकता में 4.8 पीएच मान तक भी इसकी क्रियाशीलता अच्छी रहती है। कार्बनिक पदार्थ- मृदा कार्बनिक पदार्थ की उचित मात्रा में उपस्थित में इसकी क्रियाशीलता कम पीएच मान पर भी सफलपूर्वक चलती रहती है।

कीटनाशक दवाएं- कीटनाशक दवाओं के प्रति एजोस्प्रिलम जैव उर्वरक की संवेदनशीलता एजोटाबैक्टर जैव उर्वरक से पूणतया समानता लिये होता है।

मृदा नत्रजन एंव स्फुर- मृदा में स्फुर की मात्रा डालने से एजोस्प्रिलम की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है तथा नाइट्रोजन की यौगिकीकरण प्रक्रिया भी सुचारु रुप से चलती है। एजोस्प्रिलम जैव उर्वरक द्वारा लाभान्वित फसलें- इसमें मक्का, गन्ना, ज्वार, पुष्पीय पादपों में किया जाता है।

एसीटोबैक्टर जैव उर्वरक- आधुनिक शोध कार्यो द्वारा गन्ने की फसल में नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले जीवाणु के रुप में एसीटोबैक्टर डाएजोट्रोफिकस की उपयोगिता सामने आई है।

ये आक्सीजीवी जीवाणु एसीटिलीन अपचयन करने की क्षमता रखता है तथा 10 प्रतिशत सूक्रोज युक्त नाइट्रोजन मुक्त संर्वधन माध्यम में अच्छी तरह वृद्धि करता है। ये नवीनतम शोध कार्यो का परिणाम है जिसकी खोज ब्राजील में की गई थी। ब्राजील में कई ऐसे क्षेत्र है जहां पर गन्ने की खेती बहुतायत से की जाती है जबकि इन क्षेत्रो की उर्वरा शक्ति क्षीण है। इसके अतिरिक्त इसक मृदा में केवल नाइट्रोजन एवं पोटाश उर्वरकों के प्रयोग से ही अच्छे परिणाम व फसल वृद्धि देखी गई। इस क्षेत्र में नाइट्रोजन की मात्रा 130 किग्रा प्रति हैक्टेयर आंकी गई। इन परिणामों को देखते हुए ऐसा समझा गया कि गन्ने के साथ नाइट्रोजन प्रदान करने वाला कोई सक्षमजीव होना चाहिये। इस दिशा में शोध करने पर तथ्य सामने आया कि एसीटोबैक्टर डाइएजोट्राफिक्स गन्न द्वारा प्रयाग की गई डाई नाइट्रोजन में से 20 मिग्रा प्रति ग्राम की दर से इसका यौगिकाकरण कर रहा है।

LGIP संवर्धन माध्यम पर इसका वर्धन पीताभ नारंगी जीवाणु गुच्छ के रुप में देखा जा सकता है तथा PDA संवर्धन माध्यम जिसमें कि 10 प्रतिशत ग्लूकोस हो पर ये जीवाणु गहरे काले रंग के वर्णक का निर्माण करता है।

एसीटोबैक्टर जैव उर्वरक को प्रभावित करने वाले कारक

मृदा पीएच-एजोटोबैक्टर के विभिन्न उपापचयी क्रियाओं पर मृदा पीएच का परोक्ष प्रभाव पडता है। मृदा में प्रचुर मात्रा में कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति तथा जडों के साथ साहचर्य से ये जीवाणु 5.5 पीएच मान पर भी भली भाति क्रियाशील रहते है।

कार्बनिक पदाथ- अन्य जैव उर्वरको की भांति कार्बनिक पदार्थ की उचित मात्रा जीवाणु के वर्धन की प्रारंम्भिक अवस्थाओं में सहायक हो सकता है।

नील हरित शैवाल जैव उर्वरक

नील हरित शैवाल जिन्हे सायनोबैक्टीरिया भी कहते है तंनुदार प्रकाश संश्लेषी सूक्ष्मजीव होते है जो नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने की क्षमता रखते है।

वर्गीकरण

कुल–नास्टाकेसी, साइटोनिमेटेसी, राइवुलेरिएसी, स्टीगनिमेटेसी, मेस्टीगोक्लेडेसी ऑसीकेटोरिएसी।

वंश नास्टॉक, साइटोनिमा, एनाबिना, केलोथ्रिक्स, ऑलोसीरा, प्लैक्टोनीमा आदि। नील हरित शैवाल जलीय सूक्ष्मजीव है जिनके गुणो की समानता जीवाणु वर्ग से अधिक होती है तथा इसकी कोशिका सरंचना प्रोकेरियोटिक प्रकार की होती है इसलिये इन्हे सानोबैक्टीरिया भी कहा जाता है। सभी हरित शैवाल नाइट्रोजन यौगिकीकरण में समर्थ नही होती है कुद प्रजातिया ही ये कार्य कर सकती है। जिनमें कुछ तंतुरुपी नील हरित शैवाल जिनमें हिटरासिस्ट युक्त सभी नील हरित शैवाल नाइट्रोजन यौगिकीकरण में समर्थ होते है। उन नील हरे शैवाल में जिनमें टिरोसिस्ट पायी जाती है नाइटोजन या यौगिकीकरण आक्सीजन की उपस्थिति में करती है जबकि हिटरासिस्ट रहित पलानी आक्सीजन को अनुपस्थित में नाइट्रोजन यौगिकीकरण करती है। मृदा में पाई जाने वाली नील हरित शैवाल की प्रजातियां छोटे आकार व सरल संरचना वाली जबकि नीर प्रजातिया आकार में अपेक्षाकृत बडी एवं जटिल संरचना वाली होती हैं। प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा कोशिका वर्धन करने वाले ये सूक्ष्मजीव सहजीवी के रुप में भी पाये जाते है। इनमें प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया अपेक्षाकृत कम होती है। नील हरित शैवाल का जनन समय लगभग ढाई घण्टे होता है तथा अनुकूल परिस्थितियों में उचित मात्रा में नाइट्रोजन यौगिकीकरण में सक्षम होती हैं। आर्थिक रुप से कम लागत के ये जैव उर्वरक नाइट्रोजन यौगिकीकरण द्वारा फसलों को वांछित लाभ देने में समर्थ होते है।

नील हरित शैवाल जैव उर्वरक को प्रभावित करने वाल कारक

प्रकाश- नील हरित शैवाल प्रकाश संश्लेषी होने के कारण इनके वर्धन के लिये प्रकाश अतिआवश्यक होता है। इनकी अधिकतम वृद्धि दर फ्लोरेसेन्ट तथा कैन्डेलेसेन्ट प्रकाश में होती है। सहजीवी के रुप में जीवन निर्वाह करने वाली प्रजातियों को प्रकाश की आवश्यकता नही होती है। प्रकाश की आवश्यकता अन्य कारको की उपलब्धता के आधार पर बदली रहती है।

तापमान- इन सूक्ष्मजीवों के वर्धन हेतु अनुकूल तापमान 32.5 सै0 से 35 डिग्री सै0 तक माना जाता है।

पीएच- पीएच मान 6.0 से 7.5 के मध्य नील हरित शैवाल की वृद्धि अच्छी तरह होती है। 6.0 से कम पीएच होने पर इनकी वृद्धि पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

आर्द्रता- नील हरित शैवाल वर्धन के लिये आर्द्रता अति आवश्यक होती है तथा रुके हुए निर्मल जल में इसका वर्धन त्रीव गति से होता है। आर्द्रता की अधिकतम स्थिति में इसकी वृद्धि ठीक प्रकार से होती है तथा शुष्क अवस्थाओं में निष्क्रिय अवस्था में चली जाती है।

आक्सीजन-आक्सीजीवी प्रजातियां के लिये आक्सीजन की उपस्थिति आवश्यक होती है जबकि अनाक्सी जीवी प्रजातियों की अनुपस्थिति को इलैक्ट्रोन प्रदान करने वाले पदार्थ के रुप में फोटोसिसटम1 के द्वारा प्रयोग कर वृद्धि करती है ।

एजोला जैव उर्वरक

वर्गीकरण- वर्ग-टेरीडोफाइटा

गण-सिल्वीनिएल्स

कुल-एजोलेसी

वंश-एजोला

एजोला स्वच्छ पानी में तैरती हुई अवस्था में पाया जाने वाला एक निम्नवर्गीय पादप है जो विश्वभर में पाया जाता है। ये स्वच्छ पानी के तालाबों, गडडो तथा झीलों में पानी की सतह पर तैरता हुआ दिखाई देता है। इनमें सात प्रजातियां जैसे- एजोला केरोलिनिआना, ए0 फिलीकुलोइडस, ए0 मैक्सीकाना, ए0 माइक्रोफिला, ए0 निलोटिका, एपिन्नेटा तथा ए0 रुब्रा पाई जाती है। एजोला की पृष्ठीय सतह पर एक गर्त पाया जाता हैं जिसमें एजोला के साथ सहजीवी के रुप में जीवनयापन करने वाली नील हरित शैवाल एनाबिना एजोली पाई जाती है। ऐजोला का वर्धन सामान्यत वर्ष भर होता है तथा सर्दी के मौसम जब तापमान 5 डिग्री सै0 तक पहुचं जाता है तो भी इसका वर्धन तीव गति से होता रहता है।

एजोला की पत्तियों की पृष्ठीय सतह पर गर्त में पायी जानी वाली नील हरित शैवाल के करण ही इसकी उपयोगिता नाइट्रोजन यौगिकीकरण के लिये होती है। चूकि पत्तियों के भीतर प्रवास करने वाली शैवाल को पोषण एजोला से प्राप्त होता रहता है। अतः इसका कार्य केवलनाइट्रोजन द्वारा एजोला एवं एनाबिना दोनो का जीवन निर्वाह होता हैं। ऐसा माना गया है कि 10 टन एजोला पादप का उपयोग मृदा में करने से 40 किग्रा जैविक रुप से यौगिकीकृत नाइट्रोजन मृदा को प्राप्त होती है।

एजोला जैव उर्वरक को प्रभावित करने वाले कारक

तापमान तापमान में होने वाल परिवर्तन का एजोला फर्न के वर्धन पर सीधा प्रभाव पडता है। 32 डिग्री सै0 से 20डिग्री सै0 न्यूनतम तापमान इसकी वृद्धि के लिये अनुकूल होता है।

मृदा पीएच- एजोला का जीवन चक्र 3.5 से 10.5 पीएच मान तक सुचारु रुप से होता है। नाइट्रेट के आक्सीकरण के लिये अनुकूल पीएच मान 4.5 तथा तापमान 30 डिग्री सै0 जबकि नाइट्रोजन यौगिकीकरण के अनुकूल पीएच मान 6.0 व तापमान 20 सै0 माना गया है।

जैविक कारक- ए.पिन्नेटा वृद्धि पर विभिन्न प्रकार के लार्वा विशेषकर लेपीडोप्टेरा तथा डिपटेरा वर्ग के कीटो के लार्वा के प्रति ये अति संवदेनशील होता है। ऐसी नर्सरी यहा पर एजोला का संवर्धन किया जाता है ये 25 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से कार्बोफ्यूरेन उपयोगी पाया गया है।

मृदा नत्रजन एवं स्फुर- रासायनिक उर्वरकों के रुप में दिये जाने वाला नत्रजन उर्वरक एजोला की वृद्धि पर प्रतिकूल असर डालता है। जबकि कुछ परिस्थतियों में इसकी निम्न सान्द्रता का उपयोग किया जा सकता है। दूसरी स्फुर अर्थात फास्फोरस एजोला की वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एजोला नर्सरी में एकल सुपर फास्फेट डालना लाभदायक रहता है। जबकि अघुलनशील खनिज फास्फेट उतना लाभदायक नही होता है।

प्रकाश- प्रकाश के आधिक्य में एजोला की वृद्धि एवं नाइट्रोजन यौगिकीकरण की किया पर प्रतिकल प्रभाव पडता है। एजोला की विभिन्न प्रजातियों में प्रकाश सहिष्णुता की भिन्न भिन्न होती है। ऐसा पाया गया है कि सूर्य के पूरे प्रकाश का आधा भाग उपलब्ध होता, एजोला फिलीकुलोइडस की वृद्धि अच्छी होती है। इसी प्रकार एजोला केरिलियाना द्वारा नाइट्रोजन यौगिकीकरण के लिये 8000 लक्स तथा एजोला पिन्नेटा के लिये 4300 लक्स प्रकाश तीव्रता उत्तम मानी गई है।

लवणता- लवणता में वृद्धि के साथ साथ एजोला का संवर्धन भी धीमा हो जाता है तथा लगभग 1.3 प्रतिशत लवणता होने पर इसकी वृद्धि रुक जाती है।

एजोला जैव उर्वरक की उपयोगिता

धान की फसल के रोपण के दो सप्ताह बाद खेत के पानी में एजोला डाल दिया जाता है बाद में खेत के पानी पर एजोला की परत बन जाने पर खेत का पानी निकाल कर एजोला को मृदा में मिश्रित कर दिया जाता है। खेत में पुनः पानी भरने से एजोला के बीज अंकुरित होकर दूसरी फसल देते है। एजोला का उपयोग द्वेती फसल के रुप में धान के खेत में किया जाता है।

जैव उर्वरक सूक्ष्म जीवों की जीवित कोशिकाओं को भी किसी वाहक में मिश्रित करके बनाये जाते हैं तथा जिन्हें मृदा में अथवा बीज के साथ मिला देने पर जैव उर्वरक पौधों के लिए वायुमण्डलीय नत्रजन को भूमि में स्थिर करते हैं अथवा अघुलनशील स्फुर उर्वरक पदार्थो का घुलनशील स्फुर में परिवर्तित करते हैं। भूमि में पड़े पादप अवशेषों की पाचन क्रिया बढाते है जिससे मिटटी की उर्वरा शक्ति एवं फसल उत्पादन क्षमता बढती हैं।

नत्रजन स्थिरीकरण के जैव उर्वरक :

राइजोबियम :

राइजोबियम कल्चर सबसे अधिक उपयोग होने वाला जैव उर्वरक हैं। इस प्रजाति के जीवाणु मुख्यतः दलहनी फसलों में नत्रजन स्थिरीकरण का कार्य करते हैं। दलहनी फसलों की जडों में मटमैंले रंग की छोटी बड़ी गांठों में एक प्रकार के जीवाणु निवास करते है जिसे राइजोबियम कहते है। यही राइजोबियम की संख्या व आकार में वृद्धि करते है एंव वायुमण्डल में उपलब्ध नत्रजन को ग्रहण कर दलहनी फसलों को देते हैं। पृथक-पृथक आकार प्रकार के राइजोबियम बैक्टिरिय पाये जाते है। ये जीवाणु 50 किलों से 135 किलो नत्रजन प्रति हैक्टेयर मृदा में एकत्रित कर सकते है। यह नत्रजन दलहनी फसलों द्वारा ली जाती है जिससे उत्पादन में वृद्धि होती हैं ओर लगभग 45 से 75 किलो नत्रजन प्रति हैक्टेयर भूमि में बच जाती है जो दूसरी फसलों के काम आती हा प्रत्येक दलहनी फसल के लिए एक विशिष्ट प्रकार के जीवाणु, उर्वरक का प्रयोग किया जाता है, जैसे मटर के लिए लिग्यूमिनासोरम जीवाणु बरसमी के लिए राइजोबियम ट्राइफालाई नामक जीवाणु होता है, अतः एक ही तरह के जैविक उर्वरक को सभी पलाना फसल में से प्रयोग नही करना चाहिए। राइजोबियम की 750 ग्राम मात्रा 80-100 किलों बीज के उपचार हेतु आवश्यक होगी। यदि बीज का रासायनिक पदनाशा से उपचार नही किया गया है तो कल्चर की मात्रा आधी रख सकते है।

एजेटोबैक्टर :

एजेटोबैक्टर अति सूक्ष्म जीवाणु है जो खाद्यान फसलों में नत्रजन स्थिर करने का कार्य करते हैं। एजेटोबैक्टर जैविक उर्वरक विभिन्न प्रकार की फसलों जैसे खाद्यान, फसल, सब्जियां आदि में नत्रजन एकत्रित करने के साथ-साथ पौधों की वृद्धि करने वाले पदार्थ भी उत्पन्न करते है। इनके प्रयोग से फसल की पैदावार 15 से 20 प्रतिशत अधिक बढ़ जाती है। इनके द्वारा साधारणतः 15 से 20 किलो नत्रजन एक हैक्टेयर में स्थिर हो सकती है। यह नत्रजन के योगीकरण के अलावा बीजों के अकुंरण में वृद्धि करने की क्षमता भी रखते है। इसके अतिरिक्त पौधों की जडों के बीच जीव-भार में भी वृद्धि होती है। यह विशेष प्रकार की फफूंदी द्वारा होने वाले पौध रोग के प्रति स्वयं भी सहिष्णु हो जाते है। इसके अलावा इसके उपयोग से भूमि संरचना में सुधार होता है। एजेटोबैक्टर की 750 ग्राम मात्रा 80-100 किग्रा. बीज के उपचार हेतु आवश्यक होगी।

स्फुर को घुलनशील बनाने वाले जैव उर्वरक:

पीएसएम (फॉस्फेट सॉल्यूबिलाइजिंग माइको आर्गेनिज्म) ऐसे सूक्ष्म जीवाणु है जो जमीन में उपलब्ध अघुलनशील फास्फेट को घुलनशील बनाते हैं। मृदा में फास्फेट घुलनशील एवं अघुलनशील दोनों अवस्था में पाया जाता हैं। मृदा में जब रासायनिक उर्वरक के रूप में फास्फोरस दिया जाता है तब पौधे उसका 10-30 प्रतिशत ही उपयोग कर पाते हैं। विशेष भूमि से कैल्शियम आयरन, एल्यूमिनियम आदि के साथ स्थिरीकरण करके अघुलनशील फास्फेट पदार्थ (ट्राईकैल्शियम फास्फेट/बोनमील) अपनी जीवन कियाएं कार्बनिक अम्लों को स्त्रावित करके अघुलनशील फास्फेट को विलय कर (घुलनशील बनाकर) पौधों को उपलब्ध कराते है। इनके उपयोग से फसल की पैदावार में 10-25 प्रतिशत वृद्धि होती हैं।

उत्तम खेती के लिए जैविक कृषि पंचांग की उपयोगिता

प्राचीन भारतीय खगोल शास्त्र लम्बे समय तक किये गये आकाशीय प्रेक्षणों पर आधारित हैं। इनका विविध प्रयोग हिन्दू-संस्कृति के उद्भव व विकास में भी हुआ हैं। विभिन्न ग्रह-नक्षत्रों ब्रह्माडीय शक्तियों का प्रभाव प्रकृति, मानव, प्राणी व वनस्पति जगत पर आकलित भी किया जाता रहा हैं। प्रकृति-परायण कृषि पर इसके अबर को समझकर कृषकों को एक नयी दृष्टि जाग्रत होती है। आधुनिक रासायकिन खेती में यामी असंतलन व आधुनिक वैश्वीकरण रूप में वित्तीय कुचक, सर्वविदित है। ऐसी स्थिति में जैविक समन्वित खेती के लिए बल्कि आर्थिक स्वावलम्बन, राष्ट्रीय स्वाभिमान व ग्राम के संतुलन के लिए अपरिहार्य लगती हैं।

जैविक खेती पंचांग मूलतः चन्द्रमा की गति पर आधारित है न कि ज्योतिष विद्या पर। जैविक कृति पंचांग का सहज सरल रूप से प्रयोग किया जा सकता है। हिन्दु मास पक्ष और तिथी पंचांग के प्रमुख अंग हैं। चन्द्र पूर्णिमा के दिन जिस नक्षत्र में होता है, हिन्दू चन्द्र मास का नाम उसी नक्षत्र के नाम पर रखा जाता हैं। कुल 12 हिन्दु मास के सापेक्ष व पाश्चात्य मास का कमवार वर्णन निम्न सारणी में किया गया हैं। शुक्ल पक्ष चन्द्रमा की अमावस्या से पूर्णिमा की गति अवस्था है जिसमें सूर्य और चन्द्रमा की दूरी लगभग 12 डिग्री सेन्टीग्रेड प्रतिदिन बढ जाती हैं। कृष्णपक्ष में पूर्णिमा से अमावस्या तक की गति होती है तथा यह दूरी लगभग उतनी ही कम हो जाती है। पूर्णिमा के समय जल तत्व प्रभावी होकर पत्तों में आकर्षित होता है। इस समय पौधों की कटाई करने से बचना चाहिए। आर्द्रता अधिक होने से फफंदीजनित एवं अन्य रोग लग सकते है। पूर्णिमा के 48 घण्टे पूर्व बीजारोपण लाभदायी है। अंकुरण अच्छा होता है। अमावस्या के समय घास की कटाई, काट-छांट, पेड की कटाई भूमि की जुताई, खाद, कम्पोस्ट मिलाना आदि क्रियाओं के लिए उचित होता है। खगोलीय गतिकी में जैसे सूर्य वर्ष में एक बार उत्रायण व दक्षिणायन में होता है वैसे ही चन्द्रमा प्रति 27.3 दिन में एक बार उत्रायण (चढ़ता चन्द्र) तथा एक बाद दक्षिणायन (उतरता चन्द्र) की गति करता हैं। इन विशिष्ट स्थितियों का जैविक कृषि जन्य प्रयोग निम्न हैं। इन विशिष्ट स्थितियों का जैविक कृषि जन्य प्रयोग निम्न हैं:

चढ़ते चन्द्र में उचित कार्य (उत्रायण):

1. पत्तीदार व फलदार करने से जड़ रसदार व स्वादिष्ट ।
2. कलम बांधना।
3. बीज बोना।
4. चारा बनाना।
5. पौधों के उपर स्प्रे व कम्पोस्ट का प्रयोग।
6. बीडी 501 का बनाना व प्रयोग।

उतरते चन्द्र में उचित कार्य (दक्षिणायन) :

1. जड़वाली फसलों की कटाई फसल की कटाई ।
2. फल-फुल व झाडी की छंटाई।
3. पेड कटाई, बीजारोपण।
4. भूमि की तैयारी, खेत की जुताई, खाद बनाना, खाद फैलाना।
5. सींग की खाद बनाना व प्रयोग करना।
6. उत्तम जैविक खाद वृक्ष मित्र का प्रयोग।

चन्द्रमा की पृथ्वी से दूरी गतिकी के अनसार घटती-बढ़ती रहती हैं। चन्द्रमा के पृथ्वी से अतिदूर की स्थिति को एपोजी तथा अतिपास की स्थिति को पेरीजी कहते है। अतिदर की स्थिति या दिन का आल बोने के लिए उत्तम माना जाता है।

चन्द्रमा जल के लिए सूर्यताप व पृथ्वी मिटटी कारक होता है। चन्द्रमा व शनि ग्रह के आमने - सामने की स्थिति कृषि कार्यो के लिए सर्वोत्तम होती है। पंचांग में वर्णित राहु व केतु जो चन्द्र की स्थितियां होती हैं को नोड से परिभाषित किया गया हैं। बढ़ते चन्द्र के नोड को राहु एवं उतरते चन्द्र के नोडका केतु कहते है।

केतु के दिन खेती के कार्य नहीं करने चाहिए। आकाश में दृश्यमान सूर्य पथ को 12 समान भागा म बाटा गया है जिन्हें राशि कहते है। चन्द उनकी परिकमा 27 दिनों में करता हैं।

चन्द्र जिस राशि से गुजरता है उसे राशि का प्रधान भत प्रभाव वनस्पति के भागों जड़, पत्ती, फल, फल व बीज में से एक पर पड़ता हैं। पंचांग के माध्यम से कृषि अन्य कार्य उपयुक्त समय से करने से लाभ हो सकता हैं।

प्राप्त अनुभवों के आधार पर जैविक कृषि में कृषि पंचांग के प्रयोग से 15 से 20 प्रतिशत अधिक पैदावार व उत्पादन मे गुणवोत्तर वृद्धि देखी जा रही हैं। वृहद स्तर पर पंचांग का कृषिजन्य प्रयोग लाभदायी हैं।

नीम का कृषि में महत्व

नीम को नये युग का अवतार, अदभुत जीवाणु, कीटाणुनाशक पेड़, राष्ट्रीय वृक्ष, 21वीं सदी का पेड, अदभुत पेड आदि नामों से जाना जाता है।

नीम की खेती में महत्ता – मुख्य बातें :

1. खेती में रसायनों के अंधाधुध उपयोग का विकल्प-नीम का उत्पाद।
2. नीम की निबौली में आजादरविक्तन कम्पाउण्ड- एक कीटनाशक रस पाया जाता हैं।
3. खेती में निमैक्स जैविक खाद- 125-150, 125-150 किग्रा/हैक्टेयर धान्य फसलों हेतु प्रयोग।
4. मानव में त्वचा, कैंसर, पीलिया, बुखार में लाभदायक एवं पर्यावरण के लिए उपयोगी।
5. एन्जीफर्टिलिटी अध्ययन जो चूहे एवं बंदरों में हुआ, से पता चला है कि नीम के बीज का निचोड से बने इंजेक्शन लगने से इनके जन्म पर नियंत्रण पाया हैं।
6. खेती के अलावा नीम से मनुष्य में कैंसर ठीक हो जाता है, यदि प्रारम्भ में ही दे दिया जाये। खाज-खुजली, चर्म रोग, पीलिया, रक्ताल्पता, बुखाय, हदय रोग आदि रोकने में मददकारी भी है और पर्यावरण को शुद्ध करता हैं।
7. मानव शरीर में नीम से सीरम कालेस्ट्रोल में कमी आती है जबकि सीरम प्रोटीन, रक्त यूरिया एवं यूरिक अम्ल के स्तरों पर कोई प्रभाव नहीं होता है।
8. नीम वातावरण को तो शुद्ध करता ही है, बल्कि मानव रक्त को भी साफ करता है। 5-10 नीम की पत्तियां रोज चबाने से खून की अनेक अशुद्धियों से छुटकारा मिल जाता हैं।
9. खेती में नीमेक्स नामक जैविक नीम खाद एवं कीट निवारक पदार्थ भी प्रयोग होता है जिससे मृदा की उत्पादन क्षमता में बढोतरी, मनुष्य के लिए स्वादिष्ट, विष, रहित स्वास्थ्यवर्धक जैविक भोजन उत्पादित करता है। इसकी मात्रा धान्य दलहन, तिलहनी, फसलों में 125-150 किग्रा/हैक्टेयर बुवाई से पूर्व डालने से लाभ मिलता है, फलवृक्षों में 500-1000 ग्राम प्रति वर्ष प्रति छ: मास डालने से भी लाभ होता हैं।
10. नीम की उत्पत्ति संस्कृत शब्द निम्बा से हुई है जिसका अर्थ है बीमारी से छुटकारा पाना।
11. नीम के सभी 5 भाग- पत्ती, फुल, फल जड व तने की छाल औषधि महत्व की होती हैं।

12. पत्ती में निम्बिन, निम्बिनीन, निम्बेडीअल एवं क्वैर्सेन्टिन, छाल में निम्बिन, निम्बिडीन व निम्बनीन , जिसे निम्बीसिडिन कहते है, फुल में- स्रोल्स थायोमायल एल्कोहॉल, बैन्जायल एल्कोहॉल, बैन्जायल ऐसीटेट एवं आवश्यक वसीय अमल बीज एवं फल में गैडमिन, गेडुमिन, एजाडिरोन निम्बिओल, निवौली में एजाडिरेक्टिन योगिक होते है। गेडुमिन से एनटीमेलेरियल किया जाता हैं।

13. नीम के बीज में 1.0 प्रतिशत तेल पाया जाता हैं।

खेती में उर्वरकों एवं रासायनिक पदार्थो कीटनाशकों दवाओं, फफूंदीनाशकों एवं खरपतवारनाशक दवाओं के अंधाधुध प्रयोग ने हमे सोचने के लिए यह विवश कर दिया है कि निश्चय ही ये रसायन पदार्थ स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। उदाहरण के तौर पर आज सब्जियों बैंगन, टमाटर, मिर्च, आलू आदि। फलों केला, आम, कपास, गन्ना आदि में इन रसायनों का बहुतायत में प्रयोग किया जा रहा है, आखिर सोचों कि किस राह पर जायेगी यह खेती? यदि कषि रसायनों का उपयोग ऐस ही बढता रहा, तो अगली पीढी तक भूमि के घटते उपजाउपन की समस्या तो होगी ही, साथ ही मानव जीवन भी असरक्षित हो जायेगा। अत: जब आवश्यक है जैवखेती की, जिसम नाम के उत्पाद का, भूमि एवं फसलों में प्रयोग करके हानिकारक कीडों की रोकथाम की जा सके।

निश्चय ही नीम के अनेक उपयोग है जैसे दांतुन के रूप में दांत साफ करने एवं मुंह के रोग विकार हेतु छाल को कूट-पीस कर सवा चम्मच सुबह-शाम एक माह तक लेने से पेट के कीड़े मर जाते है। मलहम के रूप में, घाव सुखान, अनाज गेहूं, चावल, दालों सुरक्षा हेतु नीम के पत्तों का प्रयोग से पई घुन कीटों की रोकथाम, कपड़ों को सुरक्षित रखने में नीम के पतो का प्रयोग, पत्तियों को पानी में डालकर नहाने से लाभ आदि इन सबको देखते हुए देश में नीम के तेल का उत्पादन आज के समय में 12,000 टन तक पहुंच गया हैं जिसके प्रमुख उत्पादक राज्य उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश , आन्ध्रप्रदेश एवं उड़ीसा हैं।

घरेलू कचरे से बागवानी के लिए वर्मी खाद

आजकल शहरों एवं कस्बों में अधिकतर परिवार गमलों में फुल एवं अन्य सजावटी पौधे लगाते है। महानगरों में जहां जमीन की अत्यधिक कमी है कई परिवार छतों पर या गमलों में पौधे या सब्जियां उगाने लगे हैं। अभिरूचि के साथ ही गमलों में पौध या सब्जियां लगाना परिवार के लिए आर्थिक रूप से लाभप्रद भी हैं। लगभग 100 गमलों में विभिन्न प्रकार की मौसमी सब्जियां उगाकर एक परिवार की आवश्यकता पुरी की जा सकती है। खेती में प्रयुक्त विभिन्न रसायनों की बची हुई मात्रा सब्जियों एवं फलों में पाई गई है। विशेषकर सब्जी उत्पादक आवश्यकता से अधिक कीटनाशी रसायनों का प्रयोग कर रहे है। नवजात शिशुओं के रक्त में भी खाद्य श्रृखंला के माध्यम से डी.डी.टी., बी.एच.सी. व अन्य रसायनों की मात्रा विश्व स्वास्थ्य संगठन के मापदण्ड से अधिक पाई गई हैं। विश्व में लगभग 50,000 रसायन कृत्रिम रूप से बनाये जा रहे हैं एवं प्रतिवर्ष 1,000 रसायन और जुड जाते है। इन घातक रोगों को जन्म देता है। विश्व स्तर पर प्रति मिनिट 4 व्यक्ति कीटनाशियों के विषैले दुष्प्रभाव से मरते हैं एवं विकासशील देशों में इसकी आधी संख्या काल कलवित हो जाती हैं। घरेलू स्तर पर गमलों में सब्जी पैदा कर अत्यधिक रसायनों के दुष्प्रभाव से बच करते है। साथ ही प्रत्येक घर के कचरें से केंचुओं द्वारा खाद तैयार किया जा सकता है। यह खाद इन गमलों में काम आ सकता हैं एवं कचरे से उत्पन्न पर्यारवरण प्रदुषण से भी कुछ सीमा तक मुक्ति मिल सकती है। शहरों में गोबर के खाद व कम्पोस्ट की उपलब्धता भी एक समस्या हैं। अतः बागवानी की अभिरूचि वाले व्यक्ति रसायनिक खादों का प्रयोग करते है। लघु स्तर पर प्रत्येक परिवार स्वयं के लिए वर्मी कम्पोस्ट तैयार कर सकता हैं।

घरेलू बागवानी एवं वर्मी खाद की आवश्यकता:

एक आत्मनिर्भर परिवार के लिए घरेलू बगीचे में 4-5 फलदार पौधे (नींब, केला. अनार, अमरूद, आम, पपीता, आवश्यकता एवं जलवायु के अनुरूप) 3-4 फल एवं सुगंधित पौधे (चमेली, रातरानी .,बोगुनवेलिया, तुलसी आदि) 20-25 सजावटी पौधों के गमले एवं 10 वर्गमीटर क्यारी में सब्जियां उगाना लाभप्रद रहेगा। अगर क्यारियों के लिए जगह की कमी है तो गमलों में ही सब्जियां,पौदीना हरा धनियां , हरी मिर्च, सलाद आदि उगाकर पारिवारिक मटका काम में लिया जा सकता है। अगर जमीन की कमी है तो बगीचे के एक कोने में छायादार जगह पर 2 मीटर गुणा 1 मीटर गुणा 0.3 मीटर का गडडा बनाकर वर्मीखाद तैयार कर सकते हैं।

प्लास्टिक की बाल्टी में वर्मीकम्पोस्ट बनाना:

बाजार में उपलब्ध बडी प्लास्टिक की बाल्टी ढक्कन सहित काम में ली जा सकती है। ढक्कन में दो गोलों में चार-चार छेद गर्म छड द्वारा 5 से.मी. व्यास के करें। इन छिद्रों से हवा के आवागमन से केंचुओं की श्वास क्रिया में सहायता मिलेगी। बाल्टी के फंदे से 75 मिलीमीटर एवं 100 मिलीमीटर उंचाई पर भी दो वृत्तों में चार-चार छेद अधिक पानी के निकास हेतु करें। बाल्टी में सबसे नीचे छोटे छोटे कंकड 10-12 मिलीमीटर व्यास बिछाकर उसके उपर लकडी का बुरादा एवं रेत 100 मिली मीटर उंचाई तक भर दें। इसके उपर लकडी का गोलाकार टुकडा रखें। लकडी के टुकडे के उपर रसोई का कचरा सब्जी आदि के छिलके पौधों की पत्तियां बिछा दे। यह सतह 50-75 मिलीमीटर की रखे। इसे उपर 200 केंचुएं डाल दें एवं पुनः रसोई का कचरा भर दें। सबसे उपर हल्की सतह में मिटटी फैला दें ताकि दुर्गन्ध न आये। ध्यान रखें कि बाल्टी लगभग 50 मिलीमीटर खाली रहे क्योंकि रसोई के कचरे में पानी की मात्रा अधिक होती है। अतः उपर से पानी तभी डाले यदि यह मिश्रण सुखा होने लगे। लगभग 30 प्रतिशत नमी रखना आवश्यक है। बाल्टी को छायादार जगह रखें। केंचुओं का विकास 26-35 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान में अधिक होती हैं। खाद बनाने हेतु चाय की बची पत्ती, सब्जी के टुकडों, फलों के छिलके, कागज क टुकडे, बचा हुआ खाना, सूखी पत्तियां लान की घास आदि डाला जा सकता हैं। जल्दी खाद तैयार करने के लिए बारीक टुकडों का प्रयोग करें। बीच में 10-15 दिन बाद उपर का मिश्रण नीचे लकडी से हिलाकर करें। लगभग 30-45 दिन में खाद बनकर तैयार हो जायेगा। इसे 12 मिलीमीटर जाली वाली छलनी में छान लें। बचा हुआ मिश्रण पुनः खाद बनाने में सक्रिय पदार्थ का काम देगा। एक परिवार के आवश्यकता बहुत सीमा तक पूरी की जा सकती हैं | आपकी बागवानी में रसायन रहित सब्जियां उगाकर आप स्वास्थ्यजनक खतरों से भी बचे रहेगें। घरों की छतों पर भी सब्जियां उगाना महानगरों में बढ़ता जा रहा हैं घरेलू बागवानी की ऐसी अभिरूचि आत्मसन्तोष के साथ ही पर्यावरण संवर्धन में भी लाभदायी हैं।

राजस्थान राज्य में फल व सब्जियों का उपयोग क्रमशः 7 ग्राम/व्यक्ति/दिन एवं 40 ग्राम/व्यक्ति/दिन हैं जबकि विश्व खाद्य एवं कृषि संस्था के मापदण्डो के आधार पर यह 92 ग्राम/व्यक्ति/दिन व 280 ग्राम/व्यक्ति/दिन होनी चाहिए। पारिवारिक स्वास्थ्य मे फलों एवं सब्जियों के उपयोग के मद्देनजर 5 व्यक्तियों के परिवार हेतु वर्मीखाद की आवश्यकतानुसार निम्नानुसार आंकी गई हैं:

5 फलदार पौधे- 5 किलों वर्मीखाद प्रति पौधा की दर से – 25 किलोग्राम

सजावटी गमले - 25 - 100 ग्राम प्रति मशाला - 2.5 किलोग्राम

सब्जियां - 10 वर्गमीटर क्षेत्रफल

750 ग्राम/वर्गमीटर/मौसम- तीन मौसम हेतु – 22.5 किलोग्राम

वर्मी खाद तैयार करने हेतु घरेलू कचरे का उपयोग किया जा सकता है। हमारे देश में घरेलू कचरा लगभग 500 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन अनुमानित हैं। इस कचरे में कार्बनिक पदार्थ 60 प्रतिशत आंका गया हैं। इस तरह प्रति परिवार 1.5 किलो घरेलू कचरा प्रतिदिन प्राप्त हो सकता हैं। वर्ष भर में यह मात्रा लगभग 5.0 क्विंटल बैठती हैं। लगभग 1600-1700 केंचुएं इस कचरें को प्रतिदिन पचाकर वर्ष भर में 2.5-2.75 क्विंटल वर्मी खाद तैयार कर सकते है। अपनी आवश्यकता की पूर्ति के बाद दो क्विंटल वर्मी खाद बेचकर 600/- रू. की आर्थिक आमदनी भी हो सकती हैं। वर्मी खाद स्वयं तैयार करना एक लाभप्रद अभिरूचि बन सकती हैं।

उपरोक्त विधियों में यदि राख उपलब्ध हो तो जरूर देखें। राश आरम्भ में अम्लीय मिश्रण को समायोजित रखेगी, साथ ही खाद में पोटाश की मात्रा भी बढेगी। अगर नीम की पत्तियां उपलब्ध हो सके तो अवश्य डाले ताकि दीमक नही पनम सकेगी। इस तरह आप वर्मी खाद स्वयं तैयार कर अपने बगीचे हेतु पोषक तत्वों की पूर्ति प्राकृतिक रूप में कर सकेंगें। वर्मीखाद बनाते समय हाथ के दस्तानों का उपयोग करें। ताकि कही कट लगे होने पर सुरक्षा हो सकेगी। क्योंकि सभी प्राकृतिक खादों में टिटनेस के कीटाणु हो सकते हैं।

'प्रोम'-टिकाऊ खेती के लिए उपयोगी खाद

उत्पादकता एवं मृदा उर्वरता के मध्य एक मजबूत सह-सम्बन्ध हैं एवं इसका महत्व बहुत पहले ही महसूस कर लिया गया था, किन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जबकि खेती जीवनयापन हेतु न की जाकर व्यवसायिक खेती की जा रही हैं, यह एक महत्वपर्ण स्थान ले चुकी हैं। आज जबकि हमारे देश की जनसंख्या एक अरब का आंकड़ा पार कर चुकी है एवं इस समय खाद्य पदार्थो की काफी मात्रा में मांग हैं, यह एक महत्वपूर्ण बात है कि हमारा देश इस बढी हुई मांग को उत्पादन में वृद्धि प्राप्त कर सकने में योग्य हैं। मगर यह तभी संभव हो पायेगा जब खेती में हम आधुनिक कृषिगत तरीकों के साथ-साथ कलि के आदानों पर सघन मंथन करें। उनमें मुख्य हैं : उर्वरक, दवा, उच्च, उत्पादक प्रजातियां व सिंचाई।

आधुनिक कृषि में रसायनों के असंतुलित उपयोग से मृदा स्वास्थ्य में कई प्रकार की विकृति आ रही है एवं उत्पादकता भी टिकाऊ न रह कर निरन्तर गिर रही है। इन परिस्थितियों में फास्फोरस युक्त जैविक खाद ' प्रोम ' एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस हेतु रॉक फास्फेट जो कि उदयपुर जिले की झामरकोरडा की खानों में बहुतायत से पाया जाता है, को कार्बनिक खाद(गोबर) व जैव उर्वरकों के साथ स्थितिवत पिलाकर सडा गलाकर तैयार किया जाता है। उक्त प्रोम खाद में मिलने वाले तत्व एवं विधि निम्न हैं:

क.सं.	तत्वों के नाम	प्रतिशत मात्रा
1	ऑर्गेनिक पदार्थ	52
2	नाइट्रोजन	2.3
3	फॉस्फोरस	2.4
4	पोटेशियम	1.6
5	कैल्शियम	3.5
6	सल्फर	1.4
7	मैग्नीशियम	1.2
8	लोहा	0.04
9	अन्य	3.5
10	नमी	30

फास्फोरस युक्त जैविक खाद बनाने की विधि :

इस खाद कसे बनाने हेतु गोबर जैव अपशिष्ट मिश्रण व रॉक फास्फेट (34/74) को 15:1 के अनुपात में मिलाकर आयताकार गडडे में जिसकी लम्बाई 2 मीटर, चौडाई 1 मीटर तथा गहराई 1/2 मीटर में डालकर 20 दिन तक सडाते हैं, इसमे पश्चात् एक टन मिश्रण में 5 पैकेट पी.एस.बी. को अच्छी तरह पलटते हुए मिलाते है तथा 30 प्रतिशत नमी बनाये रखने के लिए प्रतिदिन गर्मियों में दो बार तथा सर्दियों में एक बार पानी का छिडकाव करते हैं। इस खाद को प्रत्येक 20 से 25 दिन में अच्छी तरह पलटते रहते है। इस विधि से 95 से 105 दिन में फास्फोरस युक्त जैविक खाद बनकर तैयार हो जाती हैं। अगर किसान भाई चाहे तो टाईकोडार्मा फफूंद भी इस मिश्रण में मिला सकते हैं।

फास्फोरस युक्त वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि :

इस खाद को बनाने हेतु उपर बताये गये जैविक पदार्थो को 20 दिन पश्चात पी. एस.बी. मिलाते हुए 3 फीट चौडी, 1.5 फीट उँची तथा आवश्यकतानुसार लम्बाई की खाई बनाकर केंचुएं छोड़ देते है व 30 प्रतिशत नमी बनाये रखते हैं। इस विधि से 50-60 दिन में फॉस्फोरस युक्त वर्मी कम्पोस्ट खाद बनकर तैयार हो जाती हैं।

फास्फोरस युक्त जैविक खाद वैकल्पिक व सस्ते फास्फोरस स्त्रोत के रूप में जैविक खेती मे उपयोग कर विभिन्न फसलों की अधिक उपज ली जा सकती हैं। यह खाद न केवल तत्कालीन फसल के लिए उपयोगी है बल्कि मृदा में फास्फेट की सतत उपलब्धता बनी रहने से आगे बोई जानी वाली फसलों में भी लाभ पहुंचाती हैं।

फसलों में जीवाणु खाद का उपयोग

वायुमण्डल की नत्रजन व भूमि के फास्फोरस को पौधों को उपलब्ध कराने वाले जीवाणुओं को जीवित अवस्था में लिग्नाइट व कोयले के चूरे में मिलाकर जीवाणु खाद बनाया रखा जाता है। जीवाणु खाद में इन लाभदायक जीवाणुओं की संख्या एक ग्राम में दस करोड़ से अधिक रखी जाती हैं। ये जीवाणु तीन प्रकार के होते हैं।

राइजोबियम

ये जीवाणु दलहनी फसलों की जडों पर गुलाबी रंग की गांठे बनाकर उनमें रहते है तथा हवा में से नत्रजन लेकर पौधों को उपलब्ध कराते है। अलग-अलग फसल के लिये राइजोबियम की अलग-अलग प्रजाति होती हैं।

एजेटोबेक्टर

यह जीवाणु खाद, गैर दलहनी फसलों में उपयोग की जाती है। एजेटोबेक्टर जमीन में स्वतन्त्र रूप से रहकर हवा की नत्रजन को ग्रहण कर भूमि में छोड़ते हैं। यह नत्रजन पौधों को उपलब्ध हो जाती है।

फास्फेट विलेयक जीवाणु (पी.एस.बी.)

फसलों को फास्फोरस मुख्यतः डीएपी एवं सिंगल सुपर फास्फेट के रूप में दिया जाता है। इसका एक बड़ा भाग जमीन में अघुलनशील हो जाता है। जिसे पौधे ग्रहण नहीं कर सकते हैं। पी.एस.बी. इसी अघुलनशील फास्फोरस को पौधों को घुलनशील बनाकर उपलब्ध कराता है।

जीवाणु खाद उपयोग विधि

बीजोपचार

आवश्यकतानुसार पानी में 250 ग्राम गुड़ घोलें। इसे ठंडा कर इसमें 600 ग्राम जीवाणु खाद घोले। अब इस घोल को एक हैक्टेयर क्षेत्र की बीजों पर छिड़कते हुए हल्के हाथों से बीजों को पलटते जावें। जिससे बीजों के ऊपर जीवाणु खाद की एक बारीक परत चढ़ जावे । अब बीजों को किसी छायांदार स्थान पर सुखाकर शीघ्र ही बुवाई कर दें।

जड़ोपचार

पौधे की जड़ों को रोपाई से पूर्व जीवाणु खाद के घोल में लगभग 15 मिनट तक डुबो कर रखें तथा बाद में इनकी भूमि में रोपाई करनी चाहिए।

भूमि उपचार

जीवाणु खाद को 25 किलो गोबर मिश्रित नम मिट्टी में अच्छी प्रकार से मिलाकर पूरे खेत में सांयकाल छिटक कर सिंचाई कर देवें।

सावधानियां

जीवाणु खाद को पैकेट पर लिखी फसल के लिए ही पैकेट पर अंकित अन्तिम तिथि से पूर्व प्रयोग करें। जीवाणु खाद को रासायनिक उर्वरकों एवं दवा के साथ नहीं मिलाना चाहिए।

जैव उर्वरकों के प्रकार

जैव उर्वरक मुख्यतया दो प्रकार के होते है।

1. नत्रजनीय जैव उर्वरक
2. फास्फोरस जैव उर्वरक

नत्रजनीय जैव उर्वरक :

ऐसा अनुमानित है कि पूरी धरती पर प्रतिवर्ष लगभग 250 मिलियम टन वायुमण्डलीय नत्रजन विभिन्न तरीकों से स्थिरीकृत होकर योगिक रूप में उपयोग होती है। इसमे से लगभग 30 मिलियन टन वर्षा ऋतु में प्राकृतिक विद्युत डिस्चार्ज से, 50 मिलियन टन उद्योगों द्वारा स्थिरीकृत की जाती है। इस अनुमान से यह सिद्ध होता है कि जैविक नत्रजन स्थिरीकरण प्रक्रिया नत्रजन चक्र की एक प्रभावी कड़ी है। नत्रजनीय जैव उर्वरकों में ऐसे ही नत्रजन अलग-अलग वातावरणीय परिस्थितियों के लिये अलग-अलग जीवाणुओं की किस्में एवं प्रजातियों प्रयोग की जाती है। इनमें प्रमुख हैं राईजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पिरिलम एवं एसिटोबैक्टर।

फास्फोरेरस जैव उर्वरक:

प्राकृतिक रूप में फास्फोरस मिटटी, जल जैविक खाद, सभी पौधों, जन्तुओं एवं सूक्ष्म जीवों में विभिन्न कार्बनिक व अकार्बनिक रूपों में विद्यमान हैं। कृषि योग्य भूमि में भी फास्फोरस अल्प से अधिक मात्रा तक में विद्यमान हैं। परन्तु अम्लीय मिटटी में अधिकांश फास्फोरस अघुलनशील अवस्था में होने के कारण पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाता है। अम्लीय मिटटी में रासायनिक फास्फोरस खाद का 80-90 प्रतिशत तक हिस्सा कुछ ही दिनों में अघुलनशील अवस्था में परिवर्तित हो जाता है। प्रकृति में कुछ ऐसे सूक्ष्म जीव उपलब्ध है जो अपनी जैविक किया द्वारा इस अघुलनीय फास्फोरस को घुलनशील अवस्था में बदल देते हैं। कुछ सूक्ष्मजीव मृत वानस्पतिक एवं अन्य जीव अवशेषों में बंधित फास्फोरस को सडन किया द्वारा घुलनशील अवस्था में बदलकर मुक्त करते रहते हैं।

फास्फोरस जैव उर्वरक फास्फोरस घोलक जीवाणुओं का उत्पाद हैं। कुछ प्रमुख जीवाणु जो कि फास्फोरस जैव उर्वरकों में प्रयोग किये जा रहे है वे हैं, बैसिलस, स्यूडोमोनास, एस्परजिलस, पेनीसिलियम एवं वेम फफूंद जैसे ग्लोमस एवं गिगास्पोरा इत्यादि।

जैव उर्वरकों की प्रयोग विधि

जैव उर्वरकों का चयन:

जैव उर्वरकों के उपयोग से पूरा लाभ उठाने के लिये यह अतिआवश्यक है कि फसल के लिये सही जैव उर्वरकों का चुनाव किया जाय और नत्रजन एवं फास्फोरस दोनो पोषक तत्वों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए नत्रजनीय एवं फास्फेटिका जैव उर्वरक समान मात्रा में एक साथ प्रयोग किये जायें।

(क) दलहनी एवं लेग्यूम तिलहन फसलों के लिये :

दलहनी फसलें जैसें मूंग, उडद, मसूर, चना, मटर, अरहर, ग्वार, मोठ, चौला एवं बीन्स तथा लेग्यूम तिलहन जैसे सोयाबीन, मूंगफली तथा चारा फसलें जैसे रिजका, बरसीम इत्यादि के लिये राइजोबियम एवं फास्फेट घोलक जैव उर्वरक समान मात्रा मे केवल बीज उपचार रूप में प्रयोग करें। ध्यान रहे राइजोबियम फसल विशिष्ट होने के कारण अलग-अलग फसलों के लिये अलग-अलग पैकेट होते हैं अतः राइजोबियम, बोई जानी वाली फसल के अनुरूप उसी फसल का होना चाहिये।

(ख) गैर दलहनी फसलों के लिये :

लेग्यूम फसलों को छोडकर अन्य सभी प्रकार की फसलें जैसे गेहूँ, धान, मक्का, बाजरा, जई, जौ, सरसों, तिल्ली, प्याज, आलू, गन्ना तथा सभी प्रकार की सब्जी वाली फसलें एवं बागवानी फसले इस श्रेणी में आती हैं।

यदि मिटटी हल्की संरचना की जैसे रेतीली लोम या रेतीली हैं और नमी कम से कम मध्यम तक अपेक्षित है तो एजोटोबैक्टर और फास्फेट घोलक जैव उर्वरक प्रयोग करें।

यदि मिटटी भारी संरचना की जैसे काली चिकनी मिटटी या लोम हैं और नमी अधिक से बहुत अधिक है तो एजोस्पिरिलम और फास्फेट घोलक जैव उर्वरक प्रयोग करें।

यदि मिटटी और अन्य अवस्थाएँ मिली जुली हैं। तो एजोटोबैक्टर, एजोस्पिरिलम और फास्फेट घोलक जैव उर्वरक 1:1:2 के अनुपात में प्रयोग करें।

प्रयोग विधि :

विभिन्न फसलों में जैव उर्वरक का प्रयोग निम्न तीन तरीकों से किया जा सकता है। ध्यान रखें लेग्यूम फसलों में राइजोबियम का प्रयोग केवल बीज उपचार विधि द्वारा ही किया जाना हैं।

बीज उपचार विधि :

बुवाई किये जाने वाले प्रत्येक 10 से 12 किलों बीज के लिये 200 ग्राम (एक पैकेट) नत्रजनीय जैव उर्वरक एवं 200 ग्राम फास्फेट घोलक जैव उर्वरक पर्याप्त हैं। लगभग 300-400 मि.ली. पानी में दोनों जैव उर्वरकों को मिलावें और एक मिश्रण तैयार करें। इस मिश्रित घोल को धीरे-धीरे 10 किलों बीज के ढेर पर डाले और हाथ से तब तक उलटते पलटते जायें जब तक कि सभी बीजों पर जैव उर्वरक की समान परत न चढ जाये। उपचारित बीजों को छाया में सुखायें और तुरन्त बुवाई कर दें। यदि बोई जाने वाली भूमि अम्लीय है तो बीज उपचार के तुरन्त बाद प्रत्येक 10 किलो बीज पर एक किलो खडिया पाउडर या बुझा-चुना पाउडर छिडक कर अच्छी प्रकार बीजों के साथ मिला दें और यदि मिटटी क्षारीय है तो 10 किलों बीज पर एक किलों जिप्सम पाउडर छिडकें तथा तुरन्त बुवाई शुरू कर दें।

पौध जड़ उपचार विधि :

यह विधि रोपाई की जाने वाली फसलों में प्रयुक्त की जाती है। सब्जी वाली फसलों के लिये प्रति एकड एक किलों एजोरोबैक्टर/एजोस्पिरिलम एवं एक किलो फास्फेटिका को 5 से 10 लीटर पानी (आवश्यकतानुसार) में मिलाये। एक एकड में रोपाई की जाने वाले पौधों की जड़ों को इस धोल में लगभग 20-30 मिनट तक डुबों कर रखें और तुरन्त रोपाई करें। रोपाई किये जाने वाले धान के मामले में प्रति एकड 2 किलों एजोस्पिरिलयम एवं दो किलो फास्फोटिका की आवश्यकता होगी। इसके लिये खेत के एक कोने में 2 मीटर गुणा 1.5 गुणा 0.25 मीटर की एक क्यारी बनाये और 2 इंच तक पानी भरें। जैव उर्वरक की वांछित मात्रा इस क्यारी में डालकर पानी में अच्छी प्रकार मिला दें। एक एकड में रोपाई किये जाने वाले धान की पौध जडों को इस घोल में 8-12 घंटे तक (रात भर) डुबोकर रखें और उसके बाद रोपाई करें।

भूमि उपचार:

भूमि उपचार के लिये पौधों की संख्या एवं रोपाई किये जाने वाले कंद की मात्रा के अनुरूप प्रति एकड़ 2-4 किलो एजोटोबैक्टर/एजोस्पिरिलम एवं 2-4 किलो फास्फोटिका की आवश्यकता होती है। लगभग 50 से 100 किलो कम्पोस्ट के दो भाग कर अलग 2 ढेर बनायें। एक ढेर में कुछ पानी के साथ नत्रजनीय जैव उर्वरक एवं दूसरे ढेर में कुछ पानी के साथ फास्फोटिका जैव उर्वरक भली प्रकार मिलायें। इन दोनों ढेरों को ढक कर रात भर के लिए छोड़ दें। अगले दिन दोनों ढेरों को अच्छी तरह मिलाकर प्रयोग करें। अम्लीय भूमि में इस ढेर में लगभग 25 किलों बुझा-चुना पाउडर भी मिला दे। बागवानी फसलों में इस जैव उर्वरक कम्पोस्ट मिश्रण को पौधों की जडों के आस पास की मिटटी में मिला दें। कुछ फसलों मे इस मिश्रण को पूरे खेत में समान रूप से छिडककर मिटटी में मिलाकर भी प्रयोग किया जाता हैं। गन्ने, आलू, अदरक, हल्दी अरवी इत्यादि में नालियों में पहले जैव उर्वरक-कम्पोस्ट मिश्रण डालकर

उसके उपर कंद रखें व मिटटी से ढक दें। गन्ने की फसल में बुवाई पश्चात् 30 से 40 दिन बाद मिटटी चढाते समय भी इस मिश्रण का प्रयोग किया जा सकता है। ऐसा तभा करना चाहिये जब बुवाई किये जाने वाले टुकडों या कंदों को पौध संरक्षण रसायनों से उपचारित किया हो।

फसल अवशिष्ट प्रबन्धन एवं खरपतवार नियंत्रण

फसल अवशिष्ट प्रबन्धन:

कृषि में अवशिष्ट का मतलब है " विभिन्न पदार्थ का वह भाग जो कि फसल उत्पादन के बाद भूमि में या अलग से बचा रहता है। इसमें कार्बनिक व अकावानक रूप में विभिन्न पोषक तत्व पौध संरक्षण रसायन तथा फसल का उपयोग न हान वाल माग शामिल हैं।

फसल-अवशिष्ट उत्पादित फसल के पौधों का वह अनुपयोगी भाग है जो या तो कटाई के बाद खेत में बचा रह जाता है या फसल की गहाई व दाने निकालने के बाद शेष बचा रहता है। जैसे भूसा, धान की भूसी, मॅगफली के छिलके व मक्का का गुदा इत्यादि। सभी फसल अवशिष्ट रेशे, उर्जा, चारा व पौध पोषणों के उपयुक्त स्त्रोत हैं परन्तु यदि उनका पौध पोषणों के रूप में ही पुनः प्रयोग किया जाये तो यह उनका सर्वोतम उपयोग होगा। फसल अवशिष्ट के उचित प्रयोग से भूमि में न केवल पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि होती है बल्कि भूमि के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में भी सुधार होता है। चूंकि इनका प्रयोग इनके उत्पादन स्थल पर ही होता है। अतः परिवहन खर्च का कोई प्रश्न नही उठता है तथा फसल का अनुपयुक्त भाग होने के कारण इनकी कोई विशेष कीमत भी नही होती है। इनके प्रयोग से न तो स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या उठती हैं और न ही भारी धातु तत्वों के इकटठा होने से मिटटी की पी. एच. बदलने और लवणीकरण का कोई खतरा उत्पन्न होने का अंदेशा होता हैं।

फसल अवशिष्ट के प्रभावी प्रबन्धन के लिये कुछ कार्य बिन्दु:

प्रभावी प्रबन्धन के लिए अवशिष्ट का पूर्व उपचार जैसे सुखाना, काटना इत्यादि अति आवश्यक हैं। अच्छी तरह उपचारण के बाद अवशिष्ट को सतह पर समान रूप से फैलायें।

अधिक कार्बनः नत्रजन अनुपात के अवशिष्ट के प्रयोग से सडन प्रक्रिया के कारण कुछ समय के लिये मृदा में उपलब्ध नत्रजन में कमी आ सकती है परन्तु यह एक अस्थाई अवस्था हैं. कुछ ही दिनों सा सप्ताह में सूक्ष्म जीव अतिरिक्त कार्बन को क्षाति कर देंगे और विभिन्न पोषण तत्व धीरे-धीरे उपलब्ध अवस्था में आने लगेंगे। सड़न प्रक्रिया को तीव्र करने एवं अच्छे परिणामों के लिये अवशिष्ट पर कम्पोस्ट उत्प्रेरक जैव टीका स्प्रे कर भूमि में मिला देना चाहिये और मिलाने के 15 से 30 दिन बाद बुवाई करनी चाहिये।

नत्रजन में घनी सांद्र जैविक खाद जैसे तिलहन खली इत्यादि, लेग्यूम हरी खाद के साथ अवशिष्ट के समन्वित प्रयोग से अधिक कार्बनः नत्रजन अनुपात के अवशिष्ट के प्रयोग से होने वाले अस्थाई कुप्रभावों से बचा जा सकता हैं।

अवशिष्ट के अवयच जैसे सैल्यूलोज, लिग्निन इत्यादि की मात्रा, नमी पोषण क्षमता के अनुरूप अवशिष्ट के प्रयोग से होने वाले अस्थाई कुप्रभावों से बचा जा सकता हैं।

भूक्षरण की रोकथाम के लिये अवशिष्ट को भूसतह पर समान रूप से फैलायें ।

ढलवॉ क्षेत्रों में भूक्षरण की रोकथाम के लिए मैदानी क्षेत्रों के मुकाबले अधिक अवशिष्ट की आवश्यकता होगी। इसके साथ-साथ अन्य भूसंरक्षण उपाय जैसे घास की छलनी पटिटयों का प्रयोग, पानी की नालिया, कन्टुर फार्मिंग इत्यादि का भी प्रयोग किया जाना चाहिये। यदि पानी की नायिला टेरेस व कन्टुर खाइयाँ पहले से बनी हैं तो अवशिष्ट के अधिकाधिक प्रयोग से उक्त प्रक्रियाओं की कार्य क्षमता बढ़ जाती हैं। और खाइयों में मिटटी के कम जमाव से इन प्रक्रियाओं के रख रखाव खर्च में कमी आती है।

खरपतवार नियंत्रण:

नत्रजन में घनी सांद्र जैविक खाद जैसे तिलहन खली इत्यादि, लेग्यूम हरी खाद के साथ अवशिष्ट के समन्वित प्रयोग से अधिक कार्बनः नत्रजन अनुपात के अवशिष्ट के प्रयोग से होने वाले अस्थाई कुप्रभावों से बचा जा सकता हैं।

अवशिष्ट के अवयच जैसे सैल्यूलोज, लिग्निन इत्यादि की मात्रा, नमी पोषण क्षमता के अनुरूप अवशिष्ट के प्रयोग से होने वाले अस्थाई कुप्रभावों से बचा जा सकता हैं।

भूक्षरण की रोकथाम के लिये अवशिष्ट को भूसतह पर समान रूप से फैलायें।

ढलवा क्षेत्रों में भूक्षरण की रोकथाम के लिए मैदानी क्षेत्रों के मुकाबले अधिक अवशिष्ट की आवश्यकता होगी। इसके साथ-साथ अन्य भूसंरक्षण उपाय जैसे घास की छलनी पटिटयों का प्रयोग, पानी की नालिया, कन्टुर फार्मिंग इत्यादि का भी प्रयोग किया जाना चाहिये। यदि पानी की नायिला टेरेस व कन्टुर खाइयों पहले से बनी हैं तो अवशिष्ट के अधिकाधिक प्रयोग से उक्त प्रक्रियाओं की कार्य क्षमता बढ़ जाती हैं। और खाइयों में मिटटी के कम जमाव से इन प्रकियाओं के रख रखाव खर्च में कमी आती है।

खरपतवार नियंत्रण:

खरपतवार वह अनचाहा पौधा है जो फसल के पौधों के साथ-साथ उगता है और फसल की उचित बढवार में बाधक हैं। आमतौर पर ये अनचाहे पौधे, फसल के पौधों के साथ धुप, नमी, हवा व पोषक तत्वों में अपना हिस्सा बंटाकर फसल की बढवार एवं उत्पादन क्षमता को प्रभावित करते है। जैविक कृषि तकनीक में खरपतवार नियंत्रण को अलग से एक समस्या न मानकर पूरी प्रबन्धन प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग माना जाता हैं। तथा पूरी प्रक्रिया एवं पर्यावरण की आवश्यकताओं व सीमाओं को ध्यान में रखकर उनका हल निकाल जाता हैं। जैविक कृषि तकनीक में खरपतवार नियंत्रण प्रणालियों की प्रमुखतया दो समूहों में बांटा जा सकता हैं:

(1) खेती विधा एवं भौतिक नियंत्रण प्रणालियां तथा

(2) जैविक नियंत्रण प्रणालियां।

1. खेती विधि एवं भौतिक नियंत्रण प्रणालियां:

इस प्रणाली के अन्तर्गत आने वाली सभी विधियां यद्यपि बहुत कम खर्चीली व भौतिक प्रकार की है और पर्यावरणीय रूप **में पूर्ण सुरक्षित हैं परन्तु उनका प्रबन्धन बहुत ध्यान से किया जाना जरूरी हैं।**

1.1 जुलाई :- खेत की जुताई कर खरपतवार नियंत्रण एक अति प्राचीन प्रक्रिया है जो जुताई के विभिन्न तरीकों द्वारा तथा जुताई के विभिन्न उपकरणों जैसे डिस्क हैरों, हल इत्यादि के प्रयोग से बुवाई से पहले, बुवाई के बाद या खडी फसल में की जा सकती है। जुताई द्वारा खरपतवार नियंत्रण के प्रमुख चरण निम्न प्रकार हैं:

मिटटी में उपयुक्त नमी कर खरपतवार बीजों को उगने देना और बाद में भौतिक साधनों से जुताई कर उन्हें उखाड या काटकर नष्ट करना।

खरपतवार की जडों व वानस्पतिक प्रजनन के अन्य अंगों की मिटटी के उपरी सतह पर लाना जहां वे धूप में सुखकर मर जायेंगी।

बार-बार जुताई करने पर खरपतवारों प्रजनन में फुल व बीज न बनने देना जिससे उनका फैलाव कम हो जायेगा।

डिस्क हैरो व हल (chisel plough) प्राथमिक जुताई के लिए उत्तम उपकरण हैं। डिस्क हल तथा हैरा बुवाई के लिए खेत तैयार करने में उत्तम हैं तथा छोटे हल, डिस्क, छड खरपतवार उन्मूलक तथा रोटरी हो इत्यादि बुवाई के बावजुद खरपतवार नियंत्रण में प्रभावी हैं। नई तकनीक में कम जुताई करने वाले यंत्र जिनसे अवशिष्ट कटाई, मिटटी में मिलाना व मेड बनाने जैसे काम एक साथ किये जाते हैं का जैविक कृषि में बहुत महत्वपूर्ण स्थान हैं।

सिंचाई व जुताई प्रकियाओं का यदि सही समय व सही स्थान पर प्रयोग किया जाय तो इसक बहुत अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। इन सभी प्रकार की जुताई तकनीकों का प्रमुख उदेश्य हैं खरपतवारों की बढवार को बाधित कर मुख्यफसल के पौधों को निर्वाध गति से बढने देना जिससे वे संसाधनों के दोहन में खरपतवारों से आगे निकल सकें।

1.2 हाथ से निराई करना :-

हाथ से खरपतवार पौधों की निराई कृषि जितनी पुरानी तकनीक हैं। इस तकनीक में सभी प्रकार के खरपतवार पौधों को हाथ से उखाडकर या कुछ छोटे यंत्रों द्वारा काटकर अलग किया जाता है हालांकि यह तकनीक बहुत प्रभावी हैं परन्तु अत्याधिक मानव श्रम की आवश्यकता के कारण बहुत महंगी भी हैं। आज भी देश के अनेक भागों में, खासकर पिछडे क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर इसका प्रयोग होता है ओर इस प्रक्रिया से बहुत से लोगों को रोजगार मिलता है।

1.3 मल्चिंग :-

मल्चिंग वह प्रक्रिया हैं जिसमें भूमि की खुली सतह को विभिन्न फसल अवशिष्ट जैसे भूसा, पत्तियां, कम्पोस्ट इत्यादि की एक परत से ढक दिया जाता हैं। हाल ही के कुछ वर्षों से प्लास्टिक की काली अपारदर्शी चादर को भी मल्चिंग में प्रयोग किया जाने लगा हैं परन्तु यक एक मंहगी प्रक्रिया हैं। मल्विंग से धूप की रोशनी में व्यवधान के कारण खरपतवार बीजों का अकुंरण नही हो पाता हैं।

1.4 आग से जलानाः-

विभिन्न बागवानी फसलों जैसे फल बागानों से व कपास के खेतों में खरपतवार के लिये आग की लपटों का भी प्रयोग किया जाता है। इसके लिये विशेष प्रकार क प्रोपेन बर्नर की आवश्यकता होती हैं। इस प्रक्रिया के प्रयोग के पीछे अवधारणा यह है कि जब कपास व अन्य बागवानी फसलों के पोधे करीब 15-20 इंच से बड़े हो जायें और उनके तने मोटे व सख्त हो जायें तो वे आग की लपटों से अधिक प्रभावित नही होंगे जबकि खरपतवार पौधे जो कि छोटे-छोटे होते हैं और भूमि की सतह पर 3-4 इंच उचे ही होते है, आग की लपटों सजल जायेगें। प्रत्येक सिंचाई के बाद आने वाली खरपतवार फसल को इसी प्रकार लपटों के बार-बार प्रयोग से जलाकर नष्ट किया जा सकता हैं।

1.5 फसल चक्रः-

जैविक कृषि अवधारणा में जैव विविधता को बनाये रखने और भूमि को वनस्पति युक्त रखने के लिए फसल चक्र निर्धारण को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया हैं। विभिन्न फसल चकों से खरपतवार समस्या पर भी प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है। प्राकृतिक रूप में कुछ ऐसे खरपतवार हैं जो कुछ विशिष्ट फसलों के साथ ड्केही उगते हैं और अगर उनकी ऐसी चहेती फसलों की लगातार खेती की जाय तो उन खरपतवारों का नियंत्रण बहुत मुश्किल हो जायेगा। परन्तु इन खरपतवारों पर अगले मौसम में भिन्न प्रकार की फसल उगाकर नियंत्रण किया जा सकता हैं। फसल चक के निम्न सिद्धान्तों के पालन करने पर खरपतवारों पर प्रभावी नियत्रंण किया जा सकता हैं।

- प्रतियोगी और गैर प्रतियोगी फसल चक का उपयोग (जैसे खाद्यान्न, दलहन चक या चारा फसल व कपास चक्र इत्यादि)
- फसल चक्र में कभी खेत खाली रखकर चकीय चराई कराना।
- खरपतवारों को कम करने व उनकी बढवार को प्रभावित करने हेतु छाया करने वाली फसलों का प्रयोग।
- चारा लेग्यूम फसलों के साथ खाद्यान्न फसलों की बुवाई।
- गर्मियों में खेत को खाली छोडना तथा
- कैच, कवर व ट्रैप फसलों का प्रयोग ।

1.6 प्रबन्धन में सावधानियां:-

खरपतवार के बीजों से युक्त फसल बीजों का प्रयोग खरपतवार के फैलाव का सबसे बड़ा कारण है, और यह समस्या वहां अधिक है जहां किसान प्रमाणीकृत बीजों के स्थान पर अपने उगाये बीजों का प्रयोग करते हैं। पशुमल, विशेषकर भेड व बकरियों के मल को बिना सडाये प्रयोग करने पर भी खरपतवार के फैलाव का काफी अंदेशा रहता है। कटाई, गहाई व दाने निकालने के पश्चात् इकठा किये गये खरपतवारों बीजों को कही भी फेंक देने के बजाय जलाकर नष्ट कर देना चाहिये। खेत में कटाई के बाद भूसे को जलाने से भी खरपतवार बीज नष्ट हो जाते हैं। परन्तु जैविक खेती प्रक्रिया में इस पद्धति को बहुत सीमित किया गया हैं। कुछ कृषि पद्धतियां कुछ विशेष खरपतवारों की बढवार को प्रोत्साहित करती हैं। इन पद्धतियों में बदलाव कर इन खरपतवारों की रोकथाम की जा सकती हैं।

2. जैविक खरपतवार नियंत्रण:-

जैविक नियंत्रण में खरपतवारों के प्राकृतिक शत्रुकीटों एवं व्याधिकारक जीवाणुओं का प्रयोग कर उन पर दबाव बढाया जाता हैं। विभिन्न अनुसंधानों द्वारा अनेक प्रकार की चींटियों व कीटों तथा व्याधिकारक फफूंदों की खोज की गई है जो खरपतवार नियंत्रण में प्रभावी हैं।

2.1 प्राकृतिक शत्रु कीटों का प्रयोगः-

चूंकि प्राकृतिक शत्रु कीट केवल कुछ विशिष्ट पौधों पर ही आक्रमण करते है अतः विशिट खरपतवार को ध्यान में रखकर तथा समस्या की गंभीरता के अनुसार उचित शत्र कीट का चयन करना चाहिये। इस जैविक नियंत्रण विधा में निम्न चरण महत्वपूर्ण हैं –

1. लक्षित खरपतवार का चयन।
2. उपयुक्त शत्रु कीट का यन एवं
3. शत्रु कीट का प्रजनन कर उनकी जनसंख्या वद्धि करना और उसके प्राकृति स्थापन में सहायता करना।

शत्रु कीटों द्वारा खरपतवार नियंत्रण की शुरूआत यद्यपि सन 1985 से ही शुरू हो गई थी परन्तु विशेष प्रयास एवं सफलताएं पिछले कुछ दशकों में ही मिल पाई है। ड्केपछ विकसित देशों में जैविक कृषि फामों पर उनका प्रयोग भी बड़े पैमाने पर किया जा रहा हैं परन्तु भारत में इस दिशा में कार्य अभी पिछले कुछ वर्षों से ही शुरू हुआ हैं और बड़े स्तर पर इनका प्रयोग किया जाना शेष हैं।

2.2 व्याधिकरक फफूंद का प्रयोग:-

कुछ फफूंद प्रजातियां जैसे आल्टरनेरिया आइकोरनेटा, सर्कोस्पोरा पियारोपी, राइजोक्टोरिया सोनेनाई जलकुंभी की रोकथाम में काफी प्रभावी हैं। कोलेक्ट्रोट्राइकम ग्लोइयोस्पोरोइडिम फफूंद धान एवं सोयाबीन के खरपतवार नियंत्रण में सहायक हैं। इसी प्रकार ऐसी फफूंदियों की एक लम्बी सूची है जिनसे अनेक खरपतवारों की वृद्धि को रोका जा सकता हैं |इकम ग्लोइयोस्पोरोइडिम फफूंद धान एवं सोयाबीन के खरपतवार नियंत्रण में सहायक हैं। इसी प्रकार ऐसी फफॅदियों की एक लम्बी सूची है जिनसे अनेक खरपतवारों की वृद्धि को रोका जा सकता हैं या उन्हें पूर्ण रूप से नष्ट किया जा सकता है। इन फफूंदी खरपतवार नाशक बनाये गये हैं और संयुक्त राज्य अमेरिका व चीन जैसे देशों में बड़ी मात्रा में प्रचलित है ।

फफूंदी खरपतवार नाशकों का प्रयोग इस सिद्धान्त पर आधारित हैं कि यदि विशिष्ट प्राकृतिक व्याधिकारक को बहुत अधिक मात्रा में उस विशिष्ट खरपतवार पर उसकी बढवार के विशिष्ट चरण पर स्प्रे कर दिया जाय तो उस खरपतवार का पूरी तरह से उन्मूलन किया जा सकता हैं। बड़े पैमाने पर उपयोग किये जा रहे है विभिन्न फफूंदी खरपतवार नाशकों में कुछ प्रमुख फफूंद हैं कालेक्ट्रोट्राइकम ग्लोइयोस्पोराइडिस, सर्कोस्पोरा रोडमनाई, फाइटोप्थोरा पालमीवोरा तथा आल्टरनेरिया केसिआई। पक्सीनिया एबरप्टा वैरा, पाथीनिकोला जो कि रोली व्याधिकारक फफूंद हैं, कॉग्रेस घास की रोकथाम में काफी प्रभावी हैं।

कीट प्रबन्धन:

फसलों को हानि पहुंचाने वाले कीट मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार के कीट पौधों का रस चुसकर एवं वायरस का संकमण फैलाकर नुकसान पहुचाते है। इनमें मोयला या अँपा, हरा, तेला, थ्रिप्स, लाल मकडी, सुन्दर झंगा आदि प्रमुख कीडें है। इन हानिकारक कीडों के प्रकृति में अनेक दुश्मन मौजूद है जैसे लेडीबर्ड बीटल, काइसोपा व मकडी। काइसोपा अब प्रयोगशालाओं में तैयार किये जाने लगे हैं।

दूसरे प्रकार के कीडों में सूण्डिया प्रमुख है जो फसलों को काटकर एवं कुतरकर हानि पहुंचाती हैं। प्रकृति में इन कीडों के दुश्मन भी मौजूद है इनमें ट्राइकोग्रामा के द्वारा लटों के अण्डों से निकलने से पहले ही नष्ट किया जा सकता है। अतः फसल के अनुसार इनका प्रयोग किया जा सकता हैं।

तीसरे प्रकार के कीडे भूमि में रहते है। ये फसल की जड़ों को काटकर खातें हैं। इनमें दीमक व सफेद लट प्रमुख है। कच्चा देशी खाद एवं फसल के बिना सडे अवशेष खेत में डालने से दीमक का प्रकोप बढता हैं। अतः अच्छी तरह सड़ी-गली कम्पोस्ट खेत में बुवाई से एक

माह पहले मिला देवें। दीमक नमी से दूर भागती है अतः खेत मे नमी की भी कमी नहीं रहे। दीमक के बिल को खोदकर रानी को नष्ट कर दें।

चौरासे की पहली भारी वर्षा के समय सफेद लट क प्रौढ जमीन से निकलते हैं। रात में ये कीडे नीम, बेर , खेजडी को खाते हैं। साथ ही प्रकाश पर भी आते हैं। पेडों को खाते भृग को दूसरे दिन इकटठा कर मार दे। इसके अलावा प्रकाश पाश द्वारा भी भृगों को पकड कर मार दे। लट से बचने के लिए एक हैक्टेयर भूमि में 10-12 टन नीम की खली मिलायें। इससे सभी प्रकार के जमीन के कीडों से फसल बच्ची रहती हैं।

प्रकृति में यदि दो दुश्मन कीट एवं मित्र कीट मौजूद हैं तो फसलों में किसी भी प्रकार की दवाओं के छिडकाव की जरूरत नहीं होती हैं। लेकिन मित्र कीटों की उपस्थिति के बावजूद कभी-कभी कीडों का प्रकोप आर्थिक क्षति स्तर से अधिक हो सकता है। ऐसी स्थिति में सुण्डियों के नियत्रंण के लिए बी.टी., एन.पी.वी. आदि का उपयोग प्रभावी होता है। नीम की पत्तियों का रस, नीम, तेल, नीम की खली एवं नीम के तेल में उपस्थित उजडिरेक्टिन बहुत प्रभावी कीटनाशक का काम करता है। यह सभी प्रकार के कीडों का नियंत्रण करने में सक्षम हैं इनके अतिरिक्त फेरोमेन, ट्रेप, प्रकाशपाश द्वारा भी प्रौढ कीटों को पकडकर नष्ट किया जा सकता हैं।

बीमारियों का प्रबन्ध:

जैविक तरीकों से बीमारियों की रोकथाम कीडों के बजाय कठिन होती हैं। अतः रोगों से बचने के लिए शुरू से सावधान रहना आवश्यक है:

1. भूमि के जीवाणुओं को नष्ट करने केलिए गर्मियों में गहरी जुताई करनी चाहिए। इससे जमीन में छुपे जीवाणु नष्टहो जाते हैं।
2. एक ही फसल की बुवाई लगातार नहीं करनी चाहिए। इससे फसल में लगे कीटाणुओं को अगले मौसमें में पौषक पौधे नही होने से भोजन नही मिलेगा और मर जायेंगें।
3. रोगरोधी उन्नत किस्मों की बुवाई करनी चाहिए। क्योंकि इनमें रोगों से लड़ने की शक्ति होती हैं।
4. बीज को गर्मी की तेज धूप में सुखायें। इससे बीज में मौजूद जीवाणु मर जाते है ।
5. ट्राइकोडर्मा मित्र फफूंद हैं। यह रोग फैलाने वाली फफंद की बढवार रोक देती है। अतःबीज को ट्राइकोडर्मा से उपचारित करके बोयें। इससे भूमि एवं बीज जनित रोगों से एक हद तक छुटकारा मिल सकता हैं।
6. फसल में रोगी पौधों को देखते ही उखाडकर नष्ट कर देना चाहिए। इसके दो फायदे होंगे। पहला रोग का फैलाव नही होगा। दूसरा, जमीन में जीवाणुओं की संख्या कम होगी इससे अगले वर्ष फसल पर रोग का प्रकोप कम होगा।

इस प्रकार जैविक खेती में समेकित पोषक तत्व प्रबन्ध एवं समेकित नाशीजीव प्रबन्ध में प्रकृति में उपलब्ध जैविक घटकों का आवश्यकता के अनुसार उपयोग किया जाता हैं।

मित्र कीटों का संरक्षण:

सभी कीट फसलों को नुकसान पहुचाने वाले दुश्मन कीट नही होते है। कुछ कीट ऐसे भी होते है जो फसल को नुकसान पहुंचाने वाले कीडों को नष्ट करते है। अतः कीट नियंत्रण केवल रसायनों से ही नही होता बल्कि जीवों जीवस्य भोजनम के सिद्धान्त पर प्रकृति भी कीट नियंत्रण करती है। इन लाभकारी कीटों को हम मित्र कीटों के नाम से जानते है। इनमें से कुछ लेडी बर्ड बीटल, वास्प, काईसोपा, बग, मेन्टिस, रोबर मक्खी, डेगन मक्खी विभिन्न प्रकार की मकडियां आदि हैं। इनके अतिरिक्त इनकी संख्या को मछलियां, मेढक, छिपकली, सॉप, कौवे, मैना व कट फोडवा आदि नियत्रित करने में सहायक होते हैं।

परभक्षी कीटों में लेडी बर्ड बीटल प्रमुख हैं। इसकी विभिन्न प्रजातियों मोयला/पा/माहू, तेला, स्केल, मिलीबग आदि कीटों के नियत्रंण में प्रमुख योगदान देती हैं। इनकी वयस्क अवस्था प्रतिदिन 50 मोयला खा जाती हैं।

मेन्टिस की संख्या हालांकि कम होती है लेकिन से कई प्रकार के कीडों को खाती हैं। लेसविग, एफिड एवं कोमल शरीर वाले कीडों का भक्षण करते हैं तथा कए दिन में करीब 160 कीटों को खा जाता हैं।

कायसोपा :

हरे पंखवाला कीट होता हैं। ये मोयला, सफेद मक्खियों, चूर्णवत छोटे कीडों और अण्डों तथा कपास क बीज के गोले के कीडों के शुरूआती अवस्था की सुण्डियों/लटों को खाकर जिन्दा रहती हैं। जैविक खेती को सफल बनाने के लिए इन मित्र कीट के अनुपात में उपस्थित है। तो किसी प्रकार के कीटनाशक का छिडकाव करना जरूरी नहीं हैं।

ट्राइकोग्रामा-मित्र कीट:

ट्राइकोग्राम एक मित्र कीट है, आकार में इतना छोटा होता है कि एक आलपिन के सिर पर 8-10 वयस्क एक साथ बैठ सकते है। यह कीट लेपिडोप्टेरा समूह के हानिकारक कीडों के अण्डों में अपने अण्डे देकर अपना जीवन चक शुरू करता है एवं प्यूपा अवस्था तक परपोषी के अण्डों मे ही रहता हैं। वयस्क अवस्था में बाहर निकलकर पुनः हानिकारक कीटों के अण्डों मे अपने अण्डे देना प्रारम्भ कर देता हैं। इसका जीवन चक गर्मी में 8-10 दिन में एंव सर्दी में 9-12 दिन में पूरा होता हैं।

उपयोग की विधि:

एक कार्ड पर लगभग बीस हजार अण्डे होते हैं। ट्राइकोग्राम परजीवी के व्यस्क निकलने की संभावित तिथि से एक दिन पूर्व खेत में कार्ड की पिटिटयों को अलग-अलग कर पौधे की निचली पत्तियों के साथ बांध देना चाहिये। यह कीट 5-7 मीटर तक ही उड़ सकता है। अतः खेत में ट्राईकोकार्ड की पहली पटटी लगाना चाहिये ताकि पूरे खेत में परजीवी समान रूप से फैल जावें।

गन्ना में जड बेधक, तना, बेधक, शीर्ष बेधक हेतु 50000 अण्डे (2.5 ट्राईकोकार्ड) प्रति हैक्टेयर, फसल रोपाई के 45 दिन बाद से 4-6 बार 10 दिन के अन्तराल से छोडे । कपास में विभिन्न प्रकार के टिण्डा बेधक के लिए 1,50,000 अण्डे प्रति हैक्टेयर बुवाई के 45 दिन बाद से 6 बार एक सप्ताह के अन्तराल से छोडे। मक्का में तना छेदक के लिए 75,000 अण्डे बुवाई के 45 दिन बाद से 6-10 दिन के अन्तराल से छोडे । धान में तना छेदक के लिए 50,000 अण्डे प्रति हैक्टेयर बुवाई के 30 दिन या रोपाई के बाद से 6 बार एक सप्ताह के अन्तराल से छोडे। टमाटर व बैंगन में फल छेदक के लिए 50,000 अण्डे प्रति हैक्टेयर 45 दिन बाद से 6 बार एक सप्ताह के अन्तराल से छोडें।

सावधानियां:

1. ट्राईकोकार्ड का वयस्क निकलने की तिथि से एक दिन पूर्व सुबह अथवा शाम के समय खेत में लगाना चाहिए।
2. यथा संभव प्रकाश की सीधी किरणें ट्राईकोकार्ड की पटटी पर नहीं पड़ें।
3. जिस खेत में परजीवी छोडे गये हो उसमें ट्राईकोकार्ड लगाने के 10-15 दिन पूर्व एवं बाद तक किसी कीट नाशक रसायन का प्रयोग नहीं करें।

ट्राईकोग्राम 30 रू. प्रति ट्राईकोकार्ड की दर से राज्य में स्थित स्टेट बायो कन्ट्रोल प्रयोगशाला दुर्गापुरा , आई पीएम प्रयोगशाला एटीसी तबीजी, अजमेर, चित्तोडगढ, छत्रगढ-बूंदी, मलिकपुर, भरतपुर रामपूरा, जोधपुर, हनुमानगढ, टाउन तथा बांसवाडा से सीधे अथवा कृषि पर्यवेक्षक के माध्यम से प्राप्त किये जा सकते हैं।

जैविक खेती में ट्रेप का महत्व:

फेरामोन ट्रेप :

प्रकृति ने नर मादा प्रोढ कीडों को एक दूसरे की तरफ आकर्षित करने के लिए विशेष प्रकार के गन्ध हारमोन्स से नवाजा हैं। इन्हें फेरोमोन कहते है। वैज्ञानिकों ने इन्ही हारमोन्स को पहचान कर इनमें से कुछ का प्रयोगशालाओं में कैप्सूल के रूप में तैयार कर लिया हैं। प्रयोगशाला में तैयार ये फेरोमोन हारमोन्स प्राकृतिक हारमोन्स में कई गुणा शक्तिशाली हैं। फेरामोन ट्रेप में इन्हें पाश के उपर लगाया जाता है तो ये अपने गुण के अनुसार नर या मादा अथवा दोनों को अपनी तरफ आकर्षित करते हैं इससे :

1. नर मादा संभोग नही कर पाते है इससे मादा अगली पीढी को जन्म नही दे पाती हैं।

2. प्रोढ कीट पाश में फस जाते हैं। इसे आसानी से नष्ट किया जा सकता है।

3. प्रोढ कीट की उपस्थिति ज्ञान हो जाती है इससे लट की प्रथम अवस्था के समय ही कीटनाशी का प्रयोग कर इसका प्रभावी नियंत्रण संभव हैं।

ट्रेप फसल:

जिस प्रकार मानव को कुछ चीजें खाने में अच्छी व रहने में आरामदायक लगती है ठीक उसी प्रकार कीडों को भी अण्डे देने व खाने के लिए कुछ पौधों/ फसल की तरफ आकर्षित होते है। इन्ही फसल पौधों को ट्रेप फसल कहते है। कीडों की इसी आदत का उपयोग इसके नियंत्रण के लिए किया जा सकता है। उदाहरण के लिए हरी सुण्डी के प्रोढ कपास, टमाटर, आदि फसलों के बजाय हजारा के पौधों पर पहले अण्डे देना पसन्द करते है। अतः कपास के खेत में बीच-बीच में यदि हजारे की पौधों की बुवाई की जावें तथा रही सुण्डी के प्रोढ की उपस्थिति ज्ञान होने के उपरान्त सम्पूर्ण खेत में कीटनाशक का छिडकाव करने के बजाय केवल हजारे के पौधों पर छिडकाव करना पर्याप्त हैं।

प्रकाश पाश:

वर्षा के मौसम में प्रकाश पर प्रोढ तितलियां, मौथ, भुंग आदि को अपने साथी की तलाश में मढराते देखा जाता है। रोशनी की तरफ आकर्षिक होने वाले ये कीट फसलों को नुकसान पहुचाने वाले ज्यादातर कीडों के मॉ व पिता होते हैं। इनकी संतान फसल को हानि पहुंचाती हैं। इन प्रोढ कीटों की रोशनी की तरफ आकर्षित होने की आदत का लाभ उठाने के लिए प्रकाश पाश बनाया गया हैं।

प्रकाश पाश के लिए बिजली का बल्ब अथवा लालटेन को खेत में लगाये। उसके नीचे एक परात/तगारी तथा गडडा बनाकर उसमें मिटटी का तेल मिलाकर अथवा कीटनाशक मिलाकर पानी भर दें। सांयकाल से रात 10 बजे तक बिजली का बल्ब अथवा लालटेन जलायें। प्रकाश पर आने वाले प्रोढ कीट बल्ब अथवा लालटेन से टकराकर नीचे पानी में गिर कर मर जाते है। इस प्रकार फसल के नुकसान पहुंचाने वाली लटों को जन्म देने वाले मां व पिता ही मर जाते है और फसल पर कीडें देखने को भी नही मिलते हैं।

प्रमुख वनस्पति जन्य कीटनाशी गुण पौधे, कीटनाशी उत्पादन बनाने की विधियां एवं जिन कीटों का नियंत्रण संभव हैं उनका विवरण

पौधे का नाम	कौन से कीटो का नियंत्रण संभव है	कीटनाशक अर्क / या घोल बनाने की विधि
गुलदाउदी (Chrysanthemum cineriaefolium)	एफिड, सफेद मक्खी, Spider mite मीली बग	500 ग्राम ताजा फूलों को 5 लीटर पानी में डालकर उबालें। काढ़ा बन जाने पर ठंडा कर छान लें समान मात्रा के पानी व 30 मि.ली. साबुन का घोल डालकर स्प्रे रूप में प्रयोग करें।
	दीमक एवं जानवरों पर चिपकने वाले कीड़े	500 ग्राम फूलों के सूखे चूर्ण को 500 ग्राम अदरक का तेल तथा 3 लीटर खाना पकाने वाले तेल में डालकर उबालें। ठंडा होने पर प्रत्येक दीमक
		पहाड़ी में 10–15 मि.ली. 7–10 दिन के अंतराल पर 3–4 बार डालने पर दीमक वह जगह छोड़कर अन्यत्र चली जायेगी। जानवरों की खाल पर इस तेल की मालिश करने से उन्हें चिपकने वाले कीडों (Ticks) से बचाया जा सकता है।
बेल पत्र (*Aeglo marmelos*)	बेलपत्र के पत्ती एवं फल अर्क के प्रयोग से अनेक प्रकार के पत्ती खाने वाले एवं रस चूसने वाले कीटों को भगाया जा सकता है।	ताजा पत्तियाँ एवं फलों को अच्छी तरह कुचल कर पानी में मिलायें तथा 15–20 मिनट तक उबालें। छने हुए अर्क को स्प्रे रूप में प्रयोग करें।
सरसों व राई (*Brassica nigra & B. juncea*)	राई के ताजा पत्तों का अर्क जूट में तना गलन रोग के रोकथाम में प्रभावी है। सरसों की पत्तियों के अर्क से धान के बर्न स्पाट रोग की रोकथाम होती है।	ताजा पत्तियों को पानी में कुचलकर 10 मिनट तक उबालें। ठंडाकर छान लें और स्प्रे रूप में प्रयोग करें।
अरंडी (*Recinus communis*)	अरंडी का तेल मक्का व अन्य फसलों में वीविल, एफिड तथा इल्लियों के लिये प्रतिकर्षी का काम कर उनका फैलाव रोकता है। अरंडी की खली एक अच्छी खाद के साथ–2 अनेक मृदा जनित कीटों के लिये प्रतिकर्षी भी है।	अरंडी के तेल को पानी में मिलाकर एक इमल्शन बनायें और स्प्रे रूप में प्रयोग करें।
चौलमूगरा (*Hydnocarpus curzii*	तेल के प्रयोग से जूट, आलू तथा नींबू में तना	पानी तथा इमल्सीफायर के घोल में 2.5 से 3

H laurifolia H. wightiana & H. alpine)	व फल गलन रोग की रोकथाम की जा सकती है। खली से अनेक प्रकार के मृदा जनित कीटों को दूर रखा जा सकता है।	प्रतिशत तेल मिलाकर स्प्रे करें। अच्छे परिणाम के लिये इस घोल में थोड़ी साबुन भी मिला लेनी चाहिये।
चम्पा (*Michelia champaca*)	फूलों का अर्क अनेक कीटों के लिये प्रतिकर्षी का काम करता है और मच्छरों की इल्लियों को नष्ट करता है।	ताजा फूलों को पानी में कुचलकर अर्क बनायें और छानकर स्प्रे रूप में प्रयोग करें।
चाय (*Camellia sinensis & C. indica*)	उपयोग पश्चात् बची सूखी चाय की पत्तियाँ, गुलाब के लिये एक अच्छी खाद के साथ कीटनाशक का भी काम करती है।	उपयोग पश्चात् बची चाय की पत्तियों को सुखाकर बारीक पीस लें और मिट्टी में मिला दें।
सीताफल (*Anona squamosa*)	बीज एवं पत्तियों के अर्क के स्प्रे से धान, बैंगन व गेहूँ में डायमंड ब्लैक मोथ, फली छेदक तथा कुछ अन्य कीटों की रोकथाम होती है।	1 लीटर पानी में 25 मी. ली. अर्क मिलाकर स्प्रे करें।
धतूरा (*Datura metal*)	पत्तियों का अर्क फफूँदी की रोकथाम में प्रभावी है तथा गेहूँ व धान में रोली की रोकथाम में उपयोग किया जा सकता है। धतूरे को भंडारण कीटों की रोकथाम के लिये भी प्रयोग कर सकते हैं।	रोली की रोकथाम के लिये सूखी पत्तियों का महीन चूर्ण बनाकर फसल पर भुरकाव करें। पत्तियों के अर्क को स्प्रे रूप में भी प्रयोग कर सकते हैं। भंडारण में 10 ग्राम पत्तियों का चूर्ण प्रति किलो बीज में मिलाकर रख सकते हैं।
सैजना (*Moringa oleifera &*	जड़ एवं पत्ती अर्क एक प्रभावी जीवाणु नाशक	ताजा पत्तियों व जड़ो को पानी में कुचलकर 5–10

M. pretrygosperma)	है। तथा सब्जी वाली फसलों, फलों एवं बागवानी पौधों में जड़ गलन की रोकथाम में प्रभावी है।	मिनट तक उबालें तथा ठंडा कर व छान कर प्रयोग करें।
प्याज (*Allium cepa*)	प्याज की गाँठ का सूखा पाउडर अनेक प्रकार की फफूँदी जन्य रोगो की रोकथाम में सहायक है। प्याज का अर्क भी प्रभावी पाया गया है।	गाँठ को सुखाकर पीस लें और महीन चूर्ण रूप में भुरकाव करें अर्क बनाने के लिये ताजा प्याज को पानी में कुचलकर छान लें और स्प्रे करें।
सौंफ (*Foeniculum vulgare*)	सौंफ की पत्तियों का अर्क एक प्रभावी कीट नाशक है और अनेक प्रकार की सब्जी वाली फसलों तथा फूल वाले पौधों पर प्रयोग किया जा सकता है।	सौंफ निकालने के पश्चात् शेष बचे पौधों व पत्तियों को पानी में कुचलकर उबालें व काढ़ा बना लें। छने हुए काढ़े को कीटनाशक के रूप में पानी में मिलाकर स्प्रे करें।
मेथी (*Trigonella foenum graceum*)	ताजा पत्तियों का अर्क अनेक प्रकार के कीटों के रोकथाम में प्रभावी है।	पत्तियों को पानी में अच्छी तरह कुचल कर उबालें और ठंडा कर छान लें। इस काढ़े को कीटनाशक के रूप में पानी में मिलाकर स्प्रें करें।
क्लमीसाग (*Ipomea raptans*)	ताजा पत्तियों का अर्क या सूखी पत्तियों की धूल धान, गेहूँ व कपास के इयर हैड बग, शीथ रोट, रोली व बर्न स्पॉट बिमारी की रोकथाम में प्रभावी है।	सूखी पत्तियों को पीस कर चूर्ण बनायें और पतले कपड़े से छान लें। इस धूल/चूर्ण का भुरकाव करें। अर्क बनाने के लिये पत्तियों को पानी में कुचलकर छान लें। इस अर्क का 5 से 10 प्रतिशत घोल स्प्रे रूप में प्रयोग करें।

उपरोक्त सुझाये गये नुरखों में से अनेक नुरसे आदिवासियों एवं अन्य किसानों द्वारा सदियों से प्रयुक्त किये जा रहे है। कुछ नुस्से हाल के कुछ वर्षों में अग्रगामा किसानों द्वारा विकसित किये गये है।

प्रगामी किसानों द्वारा विकसित कुछ वनस्पति जन्य कीटनाशक बनाने की विधिया

नुस्सा क.1

- किसी तांबे के बर्तन में 3 किलो कुचली हुई नीम की पतियां , एक किलों निम्बोली चूर्ण लगभग 10 लीटर गोमूत्र में मिलाये और सील कर रख दें।
- 10 दिन पश्चात् इस घोल को तब तक उबालें तब तक कि एक आधा न रह जाये।
- एक दूसरे बर्तन में 500 ग्राम तीखी हरी मिर्च को एक लीटर पानी में कुचले और रात भर में लिये छोड दें।
- एक तीसरे बर्तन में 250 ग्राम लहसुन को एक लीटर पानी में कुचलें और रात भर के लिए छोड दें।
- अगले दिन तीनों घोलों को मिलाकर (उबला गोमूत्र घोल, मिर्च घोल व लहसुन घोल) छान लें।
- उम्दा कीटनाशी तैयार हैं। इसका प्रयोग लगभग सभी प्रकार की फसलों में अनेक प्रकार की कीटो को नियंत्रित करने में किया जा सकता हैं।

नुस्सा क.2

- एक 200 लीटर के ड्रम में 5 किलो निम्बोली चूर्ण, 1 किलो करंज बीज चूर्ण, 5 किलों बेशरम की पत्तियां तथा 5 किलों नीम की पत्तियों को कुछ पानी में कुचलें।
- इसमें 10-12 लीटर गोमूत्र मिलायें, और ड्रम को उपर तक पानी से भर दें।
- ड्रम को ढक्कन बंद कर दें और 8-10 दिन तक सडनें दें।
- 8 दिन पश्चात इस घोल का आसवन करें और आसवित द्रव को इकठा करें।
- यदि आसवित द्रव न केवल अच्छा कीटनाशी हैं वरन् इसके उपयोग से पौधों को बढवार भी अच्दी होती हैं। एक ड्रम से प्राप्त आसवित द्रव एक एक के लिए पर्याप्त हैं। इसे 300-400 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड से स्प्रे करें।
- इस कीटनाशी को कुछ महीनों तक भंडारित किया जा सकता हैं।

जैविक कृषि के अन्तर्गत क्या करें, क्या न करे

(अ) कृषि एवं उद्यान:-क्या करें

1. मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी/अधिकता जानने के लिए मिटटी तथा जल का परीक्षण कराएं।

2. कृषकों द्वारा उत्पादित/प्रकृति प्रदत्त जैव अवशेष तथा बायो एजेन्ट के प्रयोग में निर्मित जैविक खादों, कीटनाशी एवं फफूंदनाशी का प्रयोग करें।

3. गहरी जुताई कर हरी खाद व केंचुए का अधिकाधिक प्रयोग करें।

4. जैव उर्वरकों(राइजोबियम, एजेटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलम आदि) का प्रयोग सिफारिश के आधार पर करें। रासायनिक तत्वों से मुक्त जल से सिंचाई करें।

5. वैज्ञानिक फसल चक्र अपनाऐं, फसल चक में दलहनी फसलों का समावेश अनिवार्य रूप से करें।

6. फसलों/उद्यानिकी वृक्षों की उचित प्रजातियों के जैविक बीज/पौधों का प्रयोग करें।

7. फसलों/फल वृक्षों के रोग व कीट नियंत्रण हेतु जैविक तरल खाद/तरल कीटनाशी बायो पेस्टीसाइड, जैविक बीजोपचार (सूर्यकिरण, गरम जल उपचार, अग्निहोत्री) जैसी परम्परागत पद्धतियों का प्रयोग करें। बीजों को बुवाई से पूर्व अनिवार्य रूप से जैव पद्धतियों द्वारा उपचारित करके ही बुवाई करें।

9. खरपतवार नियंत्रण हेतु समय-समय पर निराई-गुडाई, समय पर बुवाई, रोपण, बुवाई की सही पद्धति का चयन तथा अन्त फसल पद्धति को अपनाएं।

10. मल्चिंग हैतु जैव अवशेष का प्रयोग करें। फसल अवशेष को खेत में ही मिटटी में मिला दें।
11. कृषि वानिकी।
12. नाइट्रोजन स्थिरकारी पौधों यथा अकेशिया जैसे प्रजातियों के रोपण को बढावा देंवें।
13. फसलों की कटाई भौतिक परिपक्वन अवस्था पर ही करें।
14. उत्पाद की समुचित सफाई, छंटनी एवं प्रसंस्करण करें तथा जैविक विधि से भण्डारित करें।
15. विविधकृत कृषि को बढावा देवें जैस फसलोत्पादन के साथ-साथ पशुपालन, कुक्कुट पालन, मत्स्य पालन जड़ी बूटी उत्पादन आदि को अपनाएं।
16. जैविक बाड को बढावा देवें। जल व भूमि संरक्षण हेतु प्राकृतिक पद्धतियों को अपनाऐं।

क्या नहीं करें:

1. रासायनिक उर्वरको/ कृषि रक्षा रसायनों का प्रयोग न करें।
2. फसल अवशेष/जैव अवशेष को न फैलावें।
3. कारखानों में प्रदुषित जल/सीवरेज जल से फसलों की सिंचाई न करें।
4. खेत की कम से कम जुताई कर मृदा की संरचना को कम से कम हानि पहुंचाएं।
5. पर्यावरण प्रदुषित करने वाली पद्धतियों का न अपनाएं।
6. मित्र कीट/जन्तुओं को क्षति न पहुंचायें।
7. दलहनी/तिलहनी फसलों की कटाई जमीन की सतह से करें न की पौधों की जड से उखाडें।
8. बिना मार्गदर्शन के नया जैविक उत्पाद प्रयोग में न लावें।

(ब) पशुपालन -क्या करें:

1. पशुओं से मानवता पूर्ण व्यवहार करें।
2. पशुओं एवं उनके रहने के स्थान को स्वच्छ आरामदेह एवं कीटाणु रहित रखें।
3. पशुओं को स्वच्छ जैविक चारा एवं दाना देंवें।
4. पशुओं से उनकी क्षमता के अनुसार निर्धारित मानकों के अन्तर्गत ही कार्य लें।
5. चारा फसले, घास, चारा पौधों के रोपण उत्पादन को बढावा देवें ।
6. पशुओं को नाद विधि से चारा दें।
7. शुष्क दूधवाला को बढावा देवें।
8. पशुओं के कीट, पिस्सू व पेट के कीडों का नियंत्रण जैविक विधि से करें।
9. स्थानीय गौवंशीय प्रजातियों को बढावा देवें।
10. प्रतिदिन कम से कम 4 घण्टे स्वतंत्र रूप से घुमाऐ।

(स) वन -क्या करें:

1. वृक्षारोपण को बढावा देवें विशेष कर जैविक कृषि हेतु उपयुक्त नीम ,बरगद, बकैन, बाज आदि का रोपण करें।
2. सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहन दें। जंगलों में रहने वाले जानवरों का संरक्षण करें।
3. जंगलों मे अनावश्यक आवाजाही पर रोक लगावें। सिल्वीपाश्चरल विधि को बढावा देवें।
4. जंगलों में चौडी पत्ती, चारा पत्ती व फलदार वृक्षों का रोपण करें।

5. वर्षा के तुरन्त बाद पौधों की वानस्पतिक एवं स्टोल मल्चिंग करें। आवश्यकतानुसार रोटेशन ग्रेडिंग करावें।

क्या न करें:

1. वृक्षों की कटाई न करें।
2. पशुओं को अत्यधिक न चरावें।
3. जंगलों में रहने वाले जीव जन्तुओं को क्षति न पहुंचावें।
4. पर्यावरण को प्रदुषित न करें।

भारत में जैविक खेती की कठिनाईयां

हमारे देश मे ऐसी बहुत सारी कम्पनियां हैं जो जैविक कृषि तकनीक द्वारा विभिन्न सब्जीवाली फसलें, फल, बागवानी फसलें, मसाले वाली फसलें तथा चाय इत्यादि उत्पादन कर उन्हें प्रमुखतय नीदरलैंण्ड व जर्मनी को निर्यात करती हैं। इन कम्पनियों के साथ जुडें किसानों को अपने उत्पादों के प्रमाणीकरण एवं विपणन की चिंता नही करनी पड़ती हैं। परन्तु छोटे व मझोलें किसानों के लिये बहुत मुश्किल काम है। निर्यात को बढावा देने के लिए उपयुक्त नियमन की आवश्यकता हैं। सन् 90 के दशक में अर्जेटिना में वहां के किसानों एवं सरकार ने मिलकर जैविक खेती के कुछ सिद्धान्त व दिशा निर्देश बनाये जो कि यूरोपीय संघ को भी स्वीकार्य थे। इसी दिशा में अभी हाल ही में भारत सरकार ने विपणन मंत्रालय के अन्तर्गत जैविक खेती के राष्ट्रीय कार्यक्रम की शुरूआत की हैं और अन्तराष्ट्रीय संस्थानों के सहयोग से " जैविक खेती के राष्ट्रीय मानक" भी बनाकर जारी किये हैं। जैविक कृषि उत्पादन में उत्पादों का विपणन सबसे कठिन हैं और उपभोक्ताओं में इस दिशा में जानकारी का अभाव एवं जागरूकता की कमी सबसे बड़ी बाधा हैं। इसके अलावा जैविक कृषि उत्पादों की अधिक कीमत भी इसे केवल उच्च वर्ग एवं विदेशियों तक ही सीमित कर रही हैं। जर्मनी और आस्ट्रेलिया ही इसके अपवाद है जहाँ जैविक कृषि उत्पादों का हिस्सा कुल कृषि उत्पादन का 2-3 प्रतिशत हैं।

अनेक संस्थान एवं जागृति अभियान जैविक कृषि तकनीक के प्रचार प्रसार में लगे हैं और वांछित प्रक्रियाओं एवं योजनाओं का उनके अनुरूप बनाने हेतु प्रयासरत हैं। जून 2001 में विदेश निर्यात के महानिदेशक द्वारा एक अधिसूचना जारी की गई है जिसके अन्तर्गत यह प्रावधान है कि वे सभी कृषि उत्पाद जो प्रमाणीकरण संस्था की देख रेख में उपयुक्त जैविक कृषि तकनीक द्वारा उगाये गये हैं को प्रमाणीकरण जैविक कृषि उत्पाद घोषित किया जायेगा। प्रमाणीकरण संस्थायें एपीडा, काफी बोर्ड, मसाला बोर्ड या चाय बोर्ड द्वारा प्राधिकृत होनी चाहिये।

सन्दर्भग्रन्थाः –

1. राधा . डी.काले 1998 अर्थवर्म सिन्ड्रोला ऑफ ओर्गेनिक फार्मिंग . पिज्म बुक प्रा.लि.बैंगलोर।
2. राव 1998 C.A.Z.A.R.I.
3. रैना , जी.एल. 1997 Agricultural Geography , Pointer Publishers Jaipur
4. सायमन्स एल. 1968 Agricultural Geography , G.Bell , Sons Ltd. London
5. शुक्ला , अभिषेक 2006 जैविक खेती एवं कीट रोग प्रबन्धन
6. शुक्ला , दीनानाथ एवं यशवन्त सिंह जयपुर 1998 आधुनिक कृषि विकास में वैज्ञानिक प्रबन्ध की आवश्यकता विज्ञान गरीमा , सिन्धु कृषि विज्ञान विशेषांक।

7. सिंह , जगदेव 2003 जैविक खेती की अवधारणा।
8. सिंह , छिददा 1985 रबी फसलों की वैज्ञानिक खेती एवं शस्य विज्ञान के सिद्धान्त भारती , भारत प्रकाशन मेरठ
9. सिंह , एस.पी. 1996 साईटिस्ट होर्टीकल्चर , जोधपुर।
10. शेखर , एन.आर. कटेवा , एम.के. 1990 प्रोम तकनीक का विकास